

**TEXT FLY
WITHIN THE
BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182114

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—67—11-1-68—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. **H81**
K21R Accession No. **P. G. H1195**
Author **कौशिक, कृष्णकुमार**
Title **ऐतिहासिक और रत्नाकर . 1951.**

This book should be returned on or before the date last marked below.

रीतिकाल और रत्नाकर

लेखक :

कृष्ण कुमार कौशिक

साहित्यरत्न



साहित्य सदन, देहरादून

प्रकाशक :
नागरी निकेतन
देहरादून

प्रथमवार १०००]

मूल्य २।।)

[मार्च १९५१

मुद्रक :
सुमेधकुमार
भास्कर प्रेस,
देहरादून

दो शब्द

स्वर्गीय बा० जगन्नाथदास जी “रत्नाकर” हिन्दी कविता के क्षेत्र में सचमुच रत्नाकर ही थे। उनका एक एक छन्द अनमोल रत्न है। उनकी कविता में ऊँचे दर्जे की भावुकता तो है ही, भाषा का सौष्टव और शब्दों का चुनाव भी अद्वितीय है। रत्नाकर जी ब्रज-भाषा के क्षेत्र में अपने समय के सर्वमान्य श्रेष्ठ कवि थे। उनके छन्द पुराने कवियों के छन्दों से टक्कर लेते हैं। मुझे विश्वास है कि यदि रत्नाकर जी खड़ी बोली में कविता करते तो वह भी इतनी ही सुन्दर होती। उनका उद्धव-शतक, उनका गङ्गावतरण हिन्दी कविता का मण्डन है।

रत्नाकर जी ब्रज-भाषा के परम भक्त थे। जीवन भर ब्रज-वाणी की उपासना करते रहे। दीर्घ काल तक वह अपनी इस साधना से दूर रहे थे, इसके लिये ‘हिन्दी कोविद रत्नमाला’ में श्री श्यामसुन्दरदास जी ने उन्हें उलाहना भी दिया था। वाणी की साधना से उनके दूर रहने का कारण बताया जाता है, उनका सांसारिक भ्रमभटों में कैसा रहना। ‘रीतिकाल तथा रत्नाकर’ के लेखक ने भी इसी बात को दोहराया है, पर वास्तव में बात ऐसी नहीं है। उनके दीर्घकाल तक ब्रज भारती की उपासना से दूर रहने का कारण था ब्रज-भाषा के प्रति सहृदयों की उदासीनता।

जब मेरे तथा श्री दुलारेलाल भार्गव के सम्पादकत्व में माधुरी निकली, तब हम दोनों ने जोर देकर उनकी रचनाओं

को माधुरी में प्रकाशित करना प्रारम्भ किया। क्योंकि माधुरी का सम्पादन हाथ में लेते समय हमारा उद्देश्य था प्राचीन की रक्षा तथा नवीन का निर्माण ! इसीलिये जहाँ माधुरी ने खड़ी बोली के नवोदित नक्षत्रों की रचनाओं का स्वागत किया, वहाँ उसने ब्रज-वाणी के छिपे हुए रत्नों को सहृदय जनों के सामने लाने का प्रयत्न भी किया।

रत्नाकर जी की कविता पर विश्लेषणात्मक ग्रन्थ लिखे जाने की अत्यन्त आवश्यकता थी। बड़ी प्रसन्नता है कि श्री कौशिक जी ने 'रीतिकाल तथा रत्नाकर' की रचना करके इस अभाव की पूर्ति करने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। श्री रत्नाकर जी मेरे परम मित्रों में से थे, उनके श्रीमुख से मैंने उनके सैकड़ों छन्द सुने थे। मैं यहां उनके कुछ संस्मरण भी देना चाहता था, कौशिक जी का भी इसके लिए आग्रह था, पर इस समय मैं इसके लिए असमर्थ हूं, फिर कभी देखा जायगा।

'रीतिकाल तथा रत्नाकर' के लेखक काव्य-रीति के पूर्ण पण्डित हैं इसलिये उन्होंने रत्नाकर जी की समीक्षा अधिकार-पूर्वक की है।

स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण मैं अधिक विस्तार से नहीं लिख सका, इसका मुझे खेद है।

रानी कटरा,
लखनऊ २६-१२-५० }

—रूपनागायण पाण्डेय

आमुख

अपने विषय में कुछ कहना अत्यन्त कठिन होता है, जो मैं अपने विषय में कहना चाहता हूं, उसे दूसरे सुनना नहीं चाहते और जो दूसरे सुनना चाहते हैं, उसे मैं कहना नहीं चाहता। अतः मैं क्यों अपना भल्लीनाथ बनूँ। जो भी है आपके सामने है, ग्वरे खोटे का निर्णय आप स्वयं करलें।

एम०ए० के विद्यार्थियों को उद्धव शतक पढ़ाते समय मुझे रत्नाकर विषयक सामग्री का अभाव अनुभव हुआ। जब मैंने अपने मित्रों से इस कमी को पूरा करने के लिए कहा, तो उन्होंने जोर दिया कि मैं ही इस काम को अपने हाथ में लूँ।

रत्नाकर जी के अगाध काव्य रत्नाकर में डुबकियाँ लगा कर जो रत्नराशि मुझे मिली, उसी को मैंने आलोचना की कसोटी पर कसने का प्रयत्न किया है। इस प्रयत्न में मुझे कहां तक सफलता मिली, इसका निर्णय करना पाठकों का काम है, मेरा नहीं।

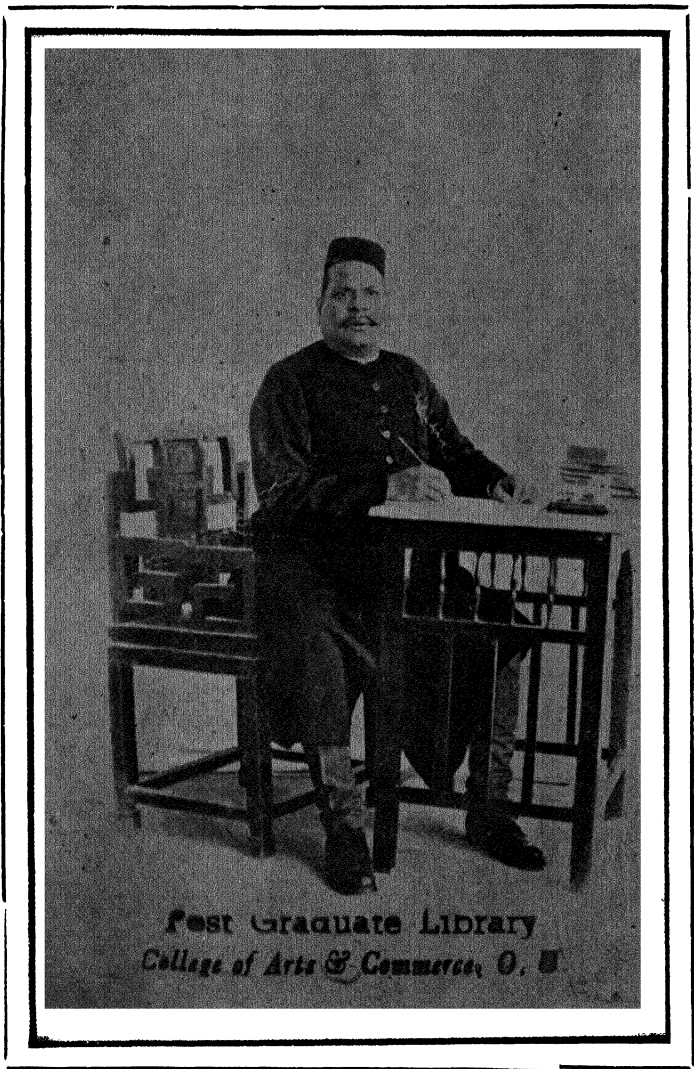
विषय-सूचि

१	जीवन वृत्त ...	...	१
२	रीतिकालीन काव्यधारा और रत्नाकर ...	...	११
३	रत्नाकर की भक्ति भावना ...	...	३६
४	भाषा और शैली ...	...	५१
५	रत्नाकर के शब्द चित्र ...	...	७४
६	रत्नाकर का काव्य कौशल ...	...	८३
७	छन्द निर्वाचन ...	...	१०४

रत्नाकर के ग्रन्थ आलोचना की कसौटी पर

८	उद्धव शतक ...	...	१११
९	गंगावतरण ...	...	१४५
१०	हरिश्चन्द्र ...	...	१६४
११	रत्नाष्टक तथा वीराष्टक ...	...	१७१
१२	अन्य रचनायें ...	...	१७७
१३	आधुनिक ब्रज-भाषा काव्य में रत्नाकर का स्थान		१८४

रीतिकाल
और
रत्नाकर



महाकवि जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

जीवन-वृत्त

वंश-परिचय तथा बाल्यकाल

काशी के एक धनी-मानी तथा दानी वैश्य परिवार में भाद्रपद ऋषि पञ्चमी, संवत् १६२३ को एक बालक का जन्म हुआ, यही बालक था ब्रज-राज, ब्रज-वाणी तथा ब्रज-भूमि का परम भक्त रत्नाकर । रत्नाकर का पूरा नाम था जगन्नाथ दास रत्नाकर ?

रत्नाकर के पूर्वज मुगल दरबार में प्रतिष्ठित पदों पर नियुक्त थे । उन्होंने मुगल साम्राज्य का उत्थान-पतन देखा था । मुगल साम्राज्य के आखिरी दौर में उन्हें लखनऊ के नवाबों की शरण लेनी पड़ी थी ।

आपके प्रपितामह सेठ तुलाराम को जहाँदारशाह के दरबार में बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी ; नवाब साहब ने एक बार उनसे तीन करोड़ रुपया कर्ज माँगा था । इस आज्ञा-पालन में सेठ जी को अपनी सारी सम्पत्ति से हाथ धोना पड़ा था । फिर भी उनके रईसी ठाठ वैसे ही रहे । पोतड़ों के रईस रत्नाकर जी में भी इसकी मात्रा कम न थी । सेठ तुलाराम एक बार जहाँदारशाह के साथ काशी आये और फिर वहीं के वासी हो गये ।

रत्नाकर जी के पिता सेठ पुरुषोत्तम दास जी अरबी, फारसी तथा उर्दू के अच्छे विद्वान थे। वे उर्दू तथा फारसी के अच्छे कवि भी थे, साथ ही हिन्दी कविता से भी उन्हें प्रेम था, इसलिए उनके घर पर कभी-कभी कवि-गोष्ठियाँ भी होती रहती थीं। भारतेन्दु जी आपके पिता के अन्तरङ्ग मित्र थे। कहते हैं कि एक बार भिलुक का छद्म बना कर भारतेन्दु जी सबेरे ही सेठ पुरुषोत्तम दास जी के घर पहुँचे और बाहर से एक पैसे का सवाल किया। पहले तो वे उन्हें पैसा देने लगे, लेकिन जब पहचान लिया तो बड़ी हँसी हुई।

अपने पिता के यहाँ होने वाली कवि-गोष्ठियों में रत्नाकर जी भी भाग लेते थे। भारतेन्दु जी की दिव्य दृष्टि से यह अलौकिक प्रतिभाशाली बालक न बच सका। रत्नाकर की प्रतिभा को उन्होंने पहचान लिया, अतः एक दिन आशीर्वाद देते हुए कहा—“ईश्वर इस बालक को दीर्घायु करे, आगे चल कर यह महाकवि होगा।

सांसारिक जीवन में प्रवेश

बी० ए० पास करने के उपरान्त रत्नाकर जी फारसी लेकर एम० ए० देना चाहते थे, पर कतिपय कारणों से आप अपनी यह हार्दिक इच्छा पूरी न कर सके। पहले आप उर्दू तथा फारसी में कविता करते थे, उस समय आपका उपनाम था ‘जकी’। आपके काव्य-गुरु थे सैय्यद मुहम्मद हसनकायज। उनमें आपकी अपार श्रद्धा थी, जो उर्दू फारसी से सम्बन्ध विच्छेद करने पर भी पूर्ववत् बनी रही।

ऐसा सुनने में आया है कि आप ब्रज-वाणी पर इतने मुग्ध

हुए कि आपने अपना उर्दू फारसी का बड़ा भारी दीवान अग्नि-देव के अर्पण कर दिया था ।

सन् १६०० में रत्नाकर जी आवागढ़ राज्य के प्रधान मन्त्री नियुक्त हुए, किन्तु वहाँ का जलवायु अनुकूल न होने के कारण आपको उक्त प्रतिष्ठित पद त्यागना पड़ा । अतः १६०२ में आप अयोध्या नरेश के आग्रह पर उनके निजी मन्त्री हो गये । राजा साहब के दिवङ्गत हो जाने पर अवधेश्वरी ने भी आपको ही अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बनाया । रत्नाकरजी तब से जीवन पर्यन्त इसी पद को सुशोभित करते रहे ।

ब्रज-भाषा-प्रेम

कविवर रत्नाकर प्राचीनता के कट्टर पुजारी थे । भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के प्रति आपके हृदय में अपार श्रद्धा थी । चाल-ढाल, रहन-सहन इतना सादा था कि देखने वाला यह न कह सके कि आप बी० ए० हैं । हर बात से भारतीयता टपकती थी ।

द्विवेदी युग में खड़ी बोली की एक आँधी आई । उसमें बड़े-बड़े पर्वत हिल गये, कितने ही ब्रज-वाणी के भक्त खड़ी बोली में पद्य-रचना करने लगे । पण्डित श्रीधर पाठक, कविता-कामिनी-कान्त श्री शङ्कर जी, हरिऔध जी तथा गुप्त जी जैसे कवि ब्रजवाणी का मोह छोड़ कर युग-प्रवाह में बह गये । पर अकेले रत्नाकर जी ही अपने मार्ग पर अडिग रहे, हिमालय की तरह !

रत्नाकर जी ने आधुनिक हिन्दी कविता के तीन युग

अर्थात् भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग तथा न्ध्यायावादी युग देखे थे, लेकिन उन पर इस युग परिवर्तन का कुछ प्रभाव न पड़ा। अपने सारे जीवन में उन्होंने हजार से ऊपर पद्य लिखे होंगे, परन्तु वे सब हैं ब्रज-भाषा में, खड़ी बोली में तो केवल यही तीन कवित्त उन्होंने लिखे थे:—

आशा व्योम मण्डल अखण्डतम-मण्डित में,

ऊषा के शुभागम का आगम जनाता है।

उच्च अभिलाषा कञ्जकलिका अधोमुख को,

प्राण फूँक फूँक मुकलित दरसाता है ॥

भारत प्रताप भानु उच्च उदयाचल से,

कुहरा कुबुद्धि का चित स्थित हटाता है।

भावी भव्य सुभग सुखद सुमनावली का,

गन्धी गन्ध-वाहक सुगन्ध लिए आता है ॥

नोरव दिगङ्गना उमङ्ग रङ्ग प्राङ्गण में,

जिसके प्रसङ्ग का अभङ्ग गीत गाती है।

अतुल अपार अन्धकार विश्व व्यापक में,

जिसकी सुज्योति की छटायें लहराती हैं।

जिसके अमन्द मुखचन्द के विलोके बिना,

पारावार तरल तरङ्ग उफमाती है ॥

पाने को उसी की बांकी झांकी मन मन्दिर में,

मन्द सुसकाती गिरा गुप्त चली आती है ॥

क्या अब कृपा का भी न यह अधिकारी रहा,

या कुछ कृपा ही ने निठुरपन धारा है।

कहे रत्नाकर उसी की तो दशा है यह,

जिसको अनेक बार तुमने दुलारा है ॥

हारा बल पौरुष न इष्ट रहा कोई कहीं,
 एक आप ही की दया दृष्टि का सहारा है ।
 हाथ पांव मारा भी न जाता इससे है अब,
 गारत हुआ यों हाथ भारत हमारा है ॥३॥

अलौकिक प्रतिभा तथा उसका विकास

रत्नाकर वास्तव में रत्नाकर ही थे । अनेक ग्रन्थ रत्नों की रचना करके उन्होंने भगवती भारती के भण्डार को भरा था, साहित्य के लालित्य को बढ़ाया था । जन्मजात प्रतिभा के साथ ही साथ कविवर रत्नाकर में अभ्यास तथा परिश्रम भी कम नहीं था । ईश्वरदत्त प्रतिभा को उनकी इस सतत साधना ने और भी बढ़ा दिया था । उन्होंने इस ईश्वरदत्त प्रतिभा को इस प्रकार बढ़ाया था—

- १ प्राचीन कवियों का अध्ययन ।
 - २ काव्य-शास्त्र अथवा रीति ग्रन्थों का अध्ययन ।
 - ३ संस्कृत, फारसी, उर्दू तथा अङ्गरेजों आदि विविध भाषाओं के काव्य तथा रीति ग्रन्थों का अध्ययन ।
 - ४ अपने समय के महाकवियों का सत्सङ्ग ।
 - ५ किसी कवि विशेष को काव्य-गुरु मानकर उसके द्वारा रचनाओं का संशोधन कराना ।
 - ६ भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति से अपना सम्बन्ध बनाये रखने के लिए इतिहास तथा पुराणों का अध्ययन, तथा
- ॐ कविधर नवनीतलाल चतुर्वेदी रत्नाकर के काव्य गुरु थे । प्रायः उनसे ही अपनी रचनाओं का संशोधन कराते थे ।

उन समस्त लोक-प्रचलित दन्त कथाओं से परिचय जिनके द्वारा किसी देश का साहित्य संस्कृति से अपना सम्बन्ध जोड़ता है।

- ७ विशाल विश्व का गहन अध्ययन तथा निरीक्षण करके सांसारिक ज्ञान का विकास।

बात यह है कि रत्नाकर जी प्राचीन परिपाटी के कवि थे इसीलिए वे केवल ईश्वरदत्त प्रतिभा के भरोसे बैठे रहने वाले नहीं थे। उनके पथ-प्रदर्शक थे रीतिकालीन कवि, जो काव्य शास्त्र का गहन अध्ययन करने के बाद कलम पकड़ते थे।

वाणी की सतत साधना करने के कारण वीणा-पाणी उनकी वाणी पर अपना हँस छोड़कर नृत्य करने लगी थी। इसी-लिए इस नये जमाने में भी वे जिस कवि सम्मेलन में चले जाते थे उसी में उनकी तूती बोलती थी। प्राचीना ब्रजभाषा के सामने बेचारी 'युगवाणी' मौन हो जाती थी। 'वीणा' के तार टूट जाते थे, गुञ्जन केवल होठों तक ही रह जाती थी। वे उन कवियों में से थे जो योंही किसी कवि-सम्मेलन में जाते नहीं थे, अगर जाते थे तो इस विश्वास के साथ:—

“दीजिइ समस्या हमें कवित्त बनाइबे को,

कलम रुके तो सर कलम कराइए ॥”

समस्या दे दीजिये, फिर क्या ? झड़ियाँ लग जायेंगी। कानपुर के एक कवि सम्मेलन में मेरे एक मित्र ने यह दृश्य अपनी आँखों देखा था। उनका कहना है कि एक ही कवित्त पर रत्नाकर जी ने पचपन पूर्तियाँ सुनायी थीं। रत्नाकर को कई

बार सुनने के बाद वही हमारे मित्र कहते हैं—“कौशिक जी ! क्या कोई पढ़ेगा रत्नाकर जैसा, मन्त्रमुग्ध हो जाते थे सुनने वाले, मैंने उन्हें लगातार चार घण्टे कविता पाठ करते हुए सुना है, जनता जमी रही, किसी ने उठने का नाम तक न लिया । ऐसी अद्भुत स्मरण शक्ति पायी थी कि किसी कवि सम्मेलन में मैंने उन्हें पुस्तक खोल कर पढ़ते हुए नहीं देखा । वे जिस भी कवि सम्मेलन में जाते थे उनमें कम से कम सौ कविन् अवश्य पढ़ते थे फिर भी जनता की तृप्ति नहीं होती थी ।”

वे थे ब्रज-भारती के भक्त, ब्रज-भारती में उन्हें एक सफल महाकाव्य की कमी बहुत खलती थी इसी की पूर्ति के लिए उन्होंने गङ्गावतरण जैसे महाकाव्य की रचना की थी ।

ब्रजभाषा के प्राचीन ग्रन्थ-रत्नों के सम्पादन में भी रत्नाकर जी ने प्रचुर धन व्यय किया था । चन्द्रशेखर वाजपेयी का ‘हम्मीर हठ’ तथा विहारी सतसई की ‘विहारी रत्नाकर’ टीका का सम्पादन करके उन्होंने अपने ब्रजभाषा-प्रेम का परिचय दिया था । विहारी सतसई पर उनकी रत्नकरी टीका प्रामाणिक मानी जाती है । अन्तिम दिनों में वे मृरसागर का सम्पादन कर रहे थे । यदि असमय में ही उनका जीवन प्रदीप न बुझ जाता तो वे हिन्दी साहित्य की इस बहुत बड़ी कमी को पूरा कर जाते ।

वे कवि ही नहीं थे आचार्य भी थे । ‘घनाक्षरी नियम रत्नाकर’ तथा ‘दोहा नियम रत्नाकर’ उनके आचार्यत्व का प्रतिपादन करने के लिए पर्याप्त हैं । उनका ‘समालोचनादर्श’ पोप के एक निबन्ध (Essay on criticism) का अनुवाद होते हुए

भी मौलिक ही कहा जायगा क्योंकि इसमें उन्होंने अपने व्यक्तित्व की छाप लगा कर मौलिकता उत्पन्न कर दी है।

उन्होंने कवित्त, सवैया दोहा, रोला छन्दों में ही रचना की है। कवित्त तथा सवैया की रचना में उनके पथप्रदर्शक थे—पद्माकर। उनकी रचनाओं को देखकर अनायास ही देव, घन-आनन्द तथा पद्माकर की याद आ जाती है। उन्हें देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि इनकी रचना किसी बीसवीं शताब्दी में साँस लेने वाले ग्रेजुवेंट ने की है। वे किसी रीतिकालीन कवि की ही रचना जान पड़ती हैं। रोला छन्द की रचना में तो नन्ददास जी ही उनको समता कर सकते हैं। वे इस युग में ब्रज भाषा के अन्तिम कवि थे, इसमें सन्देह नहीं। भारतेन्दु में प्रतिभा थी पर उनके अल्पजीवी होने के कारण वह विकसित न हो सकी, सत्यनाराण कविरत्न के विषय में भी यही कहा जा सकता है। इस समय ब्रज भाषा के जो दो चार इने गिने कवि हैं उनका क्षेत्र रत्नाकर जी के समान विस्तृत नहीं है। रत्नाकर जी ने मुक्तक काव्यों की रचना भी की और प्रबन्ध काव्यों की भी। कवित्त, सवैया तक ही उनका क्षेत्र सीमित नहीं था, बिहारी सतसई के टक्कर के दोहे भी उन्होंने लिखे थे। जान पड़ता है कि अन्तिम दिनों में वे सतसई की रचना भी करना चाहते थे पर समय से पूर्व ही दिवंगत हो जाने के कारण वे बाईस दोहों से अधिक न लिख सके। अतः हम कह सकते हैं कि अकेले रत्नाकर में ही रीतिकाल की पूर्णता होती है। इस दृष्टि से उन्हें ब्रज भाषा का अन्तिम कवि कह देना उचित ही जान पड़ता है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कलकत्ता अधिवेशन के अवसर

पर रत्नाकर को सभापति बनाकर हिन्दी प्रेमियों ने उनका उचित सम्मान किया था ।

काव्य-ग्रन्थ

काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने रत्नाकर जी के समस्त ग्रन्थ-रत्नों का संग्रह 'रत्नाकर' के नाम से किया है । इस रत्नाकर में बारह रत्न हैं, जिनके नाम हैं—द्विण्डोला, समालोचनादर्श, हर्षिचन्द्र, कलकाशी, उदयशतक, गंगावतरण, शृङ्गारलहरी, गंगालहरी, श्री विष्णु लहरी, रत्नाष्टक, तथा प्रकीर्ण पद्यावली । इनमें कुछ ऐसे कवित्त अथवा सवैये भी हैं जिन्हें कवि अपने जीवन काल में पुरा न कर सक, ने इस संग्रह में अबूरे ही छाप दिये गये हैं । जैसे:—

मानिक मन्दिर मोतिलि की चिकै, टाढी वहां गुन रु ५ की खानी ।

लाल का माल उठाय उगेज ते हैं सरुभावन मै अरुभानी ॥

मामु हैं होत ही जाके जवान पै; आवत यो उपमा उमगानी ।

उतारत संभु पै आरति बानी ॥

इस प्रकार काव्यरत्न रत्नाकर के समस्त ग्रन्थों का सुन्दर प्रकाशन कर के सभा ने वास्तव में प्रशंसनीय कार्य किया है । रत्नाकर जी कोरे कवि ही नहीं थे प्रत्युत उच्चकोटि के गद्य लेखक भी थे । समय समय पर उन्होंने पत्र-पत्रिकाओं में विभिन्न विषयों पर विद्वतापूर्ण लेख भी लिखे थे । हिन्दी का दुर्भाग्य है कि वह सब लेख अभी तक पत्र-पत्रिकाओं की फाइलों तक ही सीमित है । राय बहादुर डा० श्यामसुन्दर दास के संपादकत्व में जब सरस्वती इंडियन प्रेस में प्रकाशित होने लगी थी, तब

आप भी उनके साथ उसके तीन अन्य सहकारी सम्पादकों में सम्मिलित थे ।

अन्तिम यात्रा

रत्नाकर जी बचपन से ही व्यायाम प्रेमी थे । इसीलिए ६० से अधिक आयु हो जाने पर भी वे ४५ वर्ष से अधिक के नहीं जंचते थे । कठिन से कठिन कार्य करने पर भी थकते न थे । इसीलिए उनके बुढ़ापे को मौत से लड़ाई नहीं लड़नी पड़ी । केवल लोगों ने समाचार-पत्रों में इतना ही पढ़ा “भगवती-भारती के अनन्य भक्त, रीतिकालीन काव्य धारा के अन्तिम कवि, कविवर रत्नाकर को २१ जून सन १९३२ को हरिद्वार में गंगा-लाभ हुआ” । सचमुच कविवर रत्नाकर के दिवंगत हो जाने से ब्रज भारती रो उठी, एक अनभ्र वज्र-पात हुआ राष्ट्र-वाणी पर ! हाय ! विहारो लाल ने कदाचित् इसी समय के लिए यह पंक्ति लिखी होगी:—

“जिन दिन देखे वे कुसुम, गयी सों वीति बहार ।”

अधिक क्या कहें:—

“ग्याब था जो कुछ के देखा जो सुना अफमाना था ।”

रीतिकालीन काव्य-धारा और रत्नाकर

ब्रजभाषा का माधुर्य

हिन्दी कविता का सौन्दर्य यदि कहीं है तो ब्रजभाषा में, केवल ब्रजभाषा में। उसके सरस सौन्दर्य तथा स्निग्धता के मामले में सुधा-सरोवर भी पीछा जान पड़ता है। कैसी सरस है यह ब्रजभाषा ! इसके सम्बन्ध में अधिक न कहकर गोपालप्रसाद व्यास के शब्दों में यही कहा जा सकता है:—

“ये अनुराग के रंग रंगी, रसखान खरी रसखान की भाखा ।
या में धुरी मिसरी मधुरी, यह गोपिन के अधरान की भाखा ॥
को सरि याकि करे कवि व्यास, ये भाव भरे अधरान की भाखा ।
बोरत भक्ति निचोरत जानहि, गोविन्द के गुनगान की भाखा ।
कङ्कड़ हू यहां कांकरी हूँ रहे, सङ्करहू कि लगे यहां तारी ।
झूठे लगे यहां वेद पुरान, अनूठे लगे रमिया रस गारा ।
रोइबो भींकिबो या में नहीं, है उछाह की फूल रही फुलवारी ।
ये ब्रज की कविता है किधौं, ब्रजचन्द की छाया रही उजियारी ।”

यह वही “गोपिन के अधरान की भाखा है जामें हमारे कुँवर कान्हौं नैं तुतराइवौ सीख्यो है ।” जिसमें सुकवि सूर ने

नटवर नटनागर की ललित लीलाओं का गान करके वाणी के गौरव को बढ़ाया था। यह वही ब्रजवाणी है जिसमें भक्तप्रवर नन्ददास ने वृन्दावन विहारी के हृदयहारी गीतों को गाकर वीणापाणी की वीणा को झनझना दिया था। कितनी कोमल है यह भाषा, जिसमें न तो टवर्ग की परुषता है और न वाणी को लड़खड़ाने वाले संयुक्ताक्षरों की भरमार। “या में न रोइवो है न खीजिवो, या में मधुरी मिसरी घुरी है।” इसमें यथार्थता है, ब्रजवाणी के प्रति अन्ध भक्ति नहीं। कङ्कड़ हूँ यहाँ काँकुरी हूँ रहै” में अत्युक्ति नहीं, हृदय की सचाई है। कविवर रत्नाकर इसी ब्रजवाणी के उपासक थे, इसी की आराधना में उन्होंने अपने बाल सफेद किये थे।

रियासती झंझटों में फँसे रहने के कारण कविवर रत्नाकर को सन् १६०२ से लेकर १६२२ ई० तक साहित्य-सेवा से दूर रहना पड़ा था। अवधेश्वरी के कहने से जब वे गङ्गावतरण की रचना के लिए फिर से साहित्य क्षेत्र में पदार्पण करने लगे, तो दुनियाँ का नकशा बदल चुका था। उस समय इस “अनुराग के रंग रँगी, गोविन्द के गुनगान की भाव्या” का नाम लेना जङ्गलीपन समझा जाता था। पन्त, प्रसाद तथा निराला उस समय हमारे साहित्याकाश में नवोदित नक्षत्र बन कर चमक रहे थे। अतः “भगवती भारती के लड़ैते रत्नाकर” को वीणा-पाणी की वन्दना करते समय कहना पड़ा था:—

“ताल-तुक-हीन अङ्ग-भङ्ग छवि छोन भई
कविता बिचारी ताहि रुचिरम प्याऊँ मैं,
नन्ददास देव, घन-आनन्द बिहारी सम

सुकवि बनावन की तुम्हें सुधि द्याऊँ मैं,
सुनि रतनाकर की रचना रसीली नेकु
ढीली परी बीनहिं सुरीली करि ल्याऊँ मैं ।

रत्नाकर के पथप्रदर्शक

खड़ी बोली की कविता उन्हें ताल, तुक हीन जान पड़ती थी। पन्त, प्रसाद तथा निराला छन्दों के बन्धन ढीले करके उसे “छवि छीन” कर रहे थे। तभी तो उन्होंने वीणावाद्य प्रवीणा से प्रार्थना करते हुए नन्ददास, देव, घन-आनन्द, बिहारी के समान सुकवि बनाने की याद दिलायी थी। खड़ी बोली की कविता उन्हें रसहीन जान पड़ती थी। इसी कारण तो वे माँ भारती को ब्रजवाणी का सरस संगीत सुनाकर “ढीली परी बीनहिं, सुरीली करि ल्याऊँ मैं” की घोषणा कर रहे थे।

यह वह समय था जब तत्कालीन हिन्दी साहित्याकाश के नवोदित नक्षत्र ब्रज-भारती का सुला विरोध कर रहे थे तथा उसकी रचनाओं को रही की टोकरी में फेंकने के उपदेश दे रहे थे, उस समय के नवयुवक कवि श्री सुमित्र नन्दन पंत ने तो प्राचीन ब्रज-भाषा को इन शब्दों में अपनी श्रद्धाञ्जलि प्रदान की थी।

× × × “उस ब्रज की बांसुरी में अमृत था, नन्दन की मधु-ऋतु थी; उसमें रसिक श्याम के प्रेम की फूँक थी, उसके जादू से सूर-सागर लहरा उठा, मिठास से तुलसी मानस उमड़ चला ! आज भी वह कुछ हाथों की तूँबी बनी हुई है, जो प्राचीन जीर्ण-शीर्ण खण्डहरों के टूटे-फूटे कोनों तथा गन्दे छिद्रों से दो

एक दन्त हीन बूढ़े सांपों को जगा, उनका अन्तिम जीवन-नृत्य दिखला, साहित्य की टोकरी भरने, तथा प्रवीण कला कुशल बाजीगर कहलाने की चेष्टा कर रहे हैं। दस बरस बाद, ये प्राण हीन केंचुलियां, शायद, इनके भाड़ने के काम आयेंगी। लेकिन यह अपवाद ही खड़ी बोली की विजय का प्रमाण है। अब भारत के कृष्ण ने मुरली छोड़ पांचजन्य उठा लिया; सुप्रदेश की सुप्रवाणी जाग्रत हो उठी, खड़ी बोली उस जाग्रति की शङ्ख-ध्वनि है। ब्रज-भाषा में नींद की मिठास थी, इसमें जाग्रति का स्पन्दन; उसमें थी रात्रि की अकर्मण्य स्वप्नमय ज्योत्सना, इसमें दिवस का सशब्द कार्यव्यग्र प्रकाश। × × × × उस ब्रज के वन में भाड़-भङ्गाड़, करील-बबूर भी बहुत हैं। उसके स्वर में दादुरों का बेसुरा आलाप, उसके कृमिल-पङ्किल गर्भ में जीर्ण अस्थि-पञ्जर, रोड़े-सिवार और घोंघों की भी कमी नहीं। उसके बीचों-बीच बहती हुई अमृत जान्हवी के चारों ओर जो शुष्क कर्ममय बालुका-तट है, उसमें विलास की मृगतृष्णा के पीछे भटके हुए अनेक कवियों के अस्पष्ट पद-चिन्ह कालानिल के भोंकों से बचे हुए यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं। उस ब्रज की उर्वशी के दाहिने हाथ में अमृत का पात्र और बाँये में विष से परिपूर्ण कटोरा है, जो उस युग के नैतिक पतन से भरा छल-छला रहा है। ओह, -उस पुरानी गूदड़ी में असंख्य छिद्र, अपार सङ्कीर्णताएँ हैं। × × × × × उनकी अपरिमेय कल्पना शक्ति, कामना के हाथों द्रोपदी के दुकूल की तरह फैल कर 'नायिका' के अङ्ग-प्रत्यङ्ग से लिपट गई। बाल्यकाल से वृद्धावस्था पर्यन्त—जब तक 'चन्द्रवदनि मृग-

लोचनी' तरस खाकर उनसे 'बाबा' न कह दे, उन की रस-लोलुप सूक्ष्मतम दृष्टि केवल नख से शिख तक, यात्रा कर सकी ! ऐसी विश्व-व्यापी अनुभूति ! ऐसी प्रखर प्रतिभा ! एक ही शरीर-यष्टि में समस्त ब्रह्माण्ड देख लिया ! × × ×

रत्नाकर थे भारतेन्दु युग के कवि । अपने युग से प्रभावित होना उनके लिए आवश्यक ही था । ब्रजभाषा, जिसके वे कवि थे, भारतेन्दु युग से ही उन्हें विरासत के रूप में मिली थी । यहां यह बात भूलनी नहीं चाहिए कि भारतेन्दु युग ने गद्य के लिए खड़ी बोली को अपनाया तो अवश्य था पर कविता के लिए भारतेन्दु-युगीन कवियों ने ब्रज भाषा को ही उपयुक्त समझा । इसी कारण उन्होंने अपने नाटकों का गद्य भाग खड़ी बोली में रखा और पद्य भाग ब्रज भाषा में । “अन्धेरी नगरी” नाटक में खड़ी बोली के जो पद्य उन्होंने दिये हैं, वे केवल हास्य-रस की पुष्टि के लिये । इसी प्रकार “चन्द्रावली” आदि नाटकों में जो कहीं कहीं खड़ी बोली के पद्य आगये हैं उन्हें प्रयोगात्मक रूप ही समझना चाहिये । खड़ी बोली की कविता के लिए उन्होंने उर्दू बहरों का ही आश्रय लिया था । इससे जान पड़ा है कि वे खड़ी बोली के छन्दशास्त्र को हिन्दी कविता के लिए उपयुक्त नहीं समझते थे । अपने “हिन्दी भाषा” शीर्षक निबन्ध में उन्होंने इस बात का उल्लेख इस प्रकार किया है:—

“भजन करो श्रीकृष्ण का मिल करके सब लोग ।

सिद्ध होयगा काम औ छूटेगा सब सोग ॥

अब देखिये यह कैसी भौंडी कविता है ! मैंने इसका कारण सोचा कि खड़ी बोली में कविता मीठी क्यों नहीं बनती

तो मुझको सबसे बड़ा कारण जान पड़ा कि इस में क्रिया इत्यादि में प्रायः दीर्घ मात्रा होती है, इससे कविता अच्छी नहीं बनती। आप लोगों को ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा कि कविता की भाषा निसन्देह ब्रज-भाषा ही है और दूसरी भाषाओं की कविता इतना चित्त को नहीं पकड़ती।”

भारतेन्दु युगीन कवियों ने खड़ी बोली में भी कवितायें लिखी, परन्तु उसे हम एक परीक्षण कह सकते हैं। भारतेन्दु युगीन सभी कवि उर्दू से परिचित थे ; परिचित ही नहीं बल्कि उसमें कविता भी करते थे। भारतेन्दु का उपनाम ‘रसा’ तथा उनके समकालीन कवि प्रेमघन जी का उपनाम ‘अब्र’, पंडित प्रतापनारायण जी मिश्र का उपनाम ‘विरहमन’ उर्दू कविता के लिए ही था। इसी कारण इन लोगों ने खड़ी बोली की कविता के लिए अपनाया था उर्दू बहरों को या खयाल वाजों का लावनी को।

द्विवेदी युग में आकर भी ये कविगण ब्रज भाषा का मोह न छोड़ सके। इनकी खड़ी बोली में भी उसी “गोविन्द के गुनगान की भाखा” का रंग था। उदाहरण के लिए कविता कामिनी-कान्त पंडित नाथूराम शंकर का यह कवित्त लीजिये:—

“ताकत ही तेज न रहेगो तेज धारिन में

मंगल मयंक मन्द पीले पड़ जायँगे

मीन बिन मारे मर जायँगे तड़ागन में,

डूब डूब शंकर सरोज सड़ जायँगे

खायगो कराल काल केहरी कुरंगन को

सारे खंजरीटन के पंख झड़ जायँगे

तेरी अखियान सों लड़ेगौ अब और कौन

केवल अड़ीले दग मेरे अड़ जायँगे ।

रेखांकित शब्दों पर ध्यान दीजिये, क्या खड़ी बोली में ब्रज भाषा का पुट नहीं दिया गया है ? इसी प्रकार देवी प्रसाद पूर्ण तथा श्रीधर पाठक आदि पर भी ब्रज भाषा का प्रभाव स्पष्ट लक्षित है । द्विवेदी युग के व्यापक और ठोस आन्दोलन ने इन सबको खड़ी बोली में रचना करने के लिए कलम तो पकड़वा दिया, परन्तु ब्रज भाषा के प्रभाव से वे अपने को न बचा सके । पंचम हिन्दी साहित्य सम्मेलन में सभापति कविसम्राट पंडित श्रीधर पाठक के निर्वाचन सम्बन्धी प्रस्ताव का समर्थन करते हुए पंडित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने उनकी कविता की प्रशंसा में ये शब्द कहे थे:—

“जिन्होंने अजतक पाठक जी की कविताएँ नहीं पढ़ी हैं उनसे अनुरोध है कि वे पढ़ें और देखें कि पाठक जी कैसे मधुर कवि हैं । उनकी कविता का कुछ नमूना मैं यहां सुनाता हूँ । एकान्तवासी योगी की पहली पंक्ति है:—

“सुनिये झाड़खण्ड बनवासी, दयाशील हे बैरागी !

करके कृपा बतादो मुझको कहां जलै, है वह आगी ?”

जो समझते हैं कि यह विशुद्ध खड़ी बोली की कविता है, वह भूलते हैं । ‘कहां जलै है वह आगी’ खड़ी बोली नहीं है, खड़ी बोली है—‘कहां जलती है वह आगी’ । सज्जनो, यह कविता इतनी मधुर इसी से हुई कि इसमें ब्रज-भाषा की पुट है । अगर यह पुट न होती तो यह कविता सम्पुट हो जाती (हर्ष-ध्वनि) ।”

उस समय खड़ी बोली की कविता में ब्रज भाषा का पुट देना बुरा नहीं समझा जाता था। हो सकता है कि ऐसा अनजाने में हुआ हो। मैथिलीशरण को छोड़ कर द्विवेदी युगीन कवियों में कोई ऐसा कवि नहीं है, जो ब्रज-भाषा के व्यापक प्रभाव से अपने को बचा सका हो।

तब रत्नाकर जी से कैसे आशा की जा सकती थी कि वे ब्रज भाषा का मोह त्याग दें ! वे थे दृढ़ निश्चयी, एक दिशा की ओर चल पड़े, तो चल पड़े ! आंधी और तूफानों के बीच भी वे अपने व्रत से विचलित नहीं हुए।

मुगल शासनसत्ता के उठते ही राजाश्रित कवियों का युग समाप्त हुआ। “लाखन खरिच कर आखर खरीदे हैं” की एक कहानी रह गयी। (अतः कविता-कामिनी को सेठ साहुकारों के दरवाजे भाँकने पड़े। जयशाह की तरह एक एक दोहे का मूल्य अशर्कियों से चुकाने वाले कदरदान तो नहीं रह गये थे फिर भी जो-कुछ था उसे गनीमत समझना चाहिए। सेठ साहुकारों की कदरदानी ने या कविता प्रेम ने, बेचारी कविता देवी को अपने यहाँ शरण तो दे दी। कवि गोष्ठियाँ होने लगी। काशी में भारतेन्दु जी की हवेली में इस प्रकार की कवि-गोष्ठियाँ नित्य होती रहती थीं। रत्नाकर जी के पिता श्री पुरुषोत्तम-दास जी अग्रवाल के यहाँ भी महीने में एक दो बार इस प्रकार की अखाड़े बाजियाँ होती ही रहती थीं। कवियों का दंगल कराने के लिये समस्याएँ दे दी जाती थीं। रत्नाकर जी भी कभी कभी इन कवि-गोष्ठियों में सम्मिलित हो जाया करते थे ‘शृङ्गार लहरी’ तथा ‘प्रकीर्ण पद्यावली’ में संग्रहित सबैये हमारे इस कथन के

साक्षी हैं। एक ही समस्या पर भारतेन्दु तथा रत्नाकर के दो कवित्त देखिये:—

“साजि सेज रङ्ग के महल में उमङ्ग भरी,
 पिय गर लागी कसक कसक मिटाएँ लेत ।
 ठानी विपरीत पूरी मैन की मारूरन सौं
 सुमर समर जय-पत्रहि लिखाएँ लेत ।
 हरिचन्द उभकि उभकि रीति गति करि,
 जोग भरी पियहिं भुकोरन हराए लेत ।
 याद कर पी की सब निरदय घातें आजं,
 प्रथम समागम को बदलो चुकाएँ लेत ॥
 (भारतेन्दु)

“रति विपरीत रची प्यारी मनमोहन सौं,
 करि कै कलोल केलि कसक मिटाए लेति ।
 हिय हल कोरन सौं भुमकि भुकोरन सौं,
 किंकनि के सौरन सौं उर उमगाए लेति ।
 उच्च उच्च कोरन सौं जुग जङ्घ जोरनि सौं,
 मैन की मरोरन सौं दुमुचि दबाए लेति ।
 अङ्ग अङ्ग अमित अनङ्ग की तरङ्ग भरी,
 प्रथम समागम को बदलो चुकाए लेति ॥”
 (शृङ्गार लहरी ६२)

ऐसी-ऐसी विचित्र समस्याएँ दे दी जाती थीं, जिनकी पूर्ति ऐसे-वैसे कवियों के बस का काम नहीं था। रत्नाकर जी इस प्रकार की समस्याओं की पूर्तियों में भी अपना कौशल दिखाते थे। उनकी “पावक पुञ्ज में पङ्कज फूलै” वाली समस्या

इसी श्रेणी में आती है। इसी समस्या पर रत्नाकर जी के दो कवित्त देखिये:—

“गोकुल गांव में फाग मच्यौ हुरिहारिनी के उर आनन्द फूले ।
मूठ चलावत स्याम चितै रतनाकर नैन निमेष ह्वै भूले ॥
लाल गुलाल की घूघरि में ब्रजबालनि के हृमि आनन तूले ।
काम कलाकर की मनौ मूठ सों पावक पुञ्ज में पङ्कज फूले ॥”

“सेस निदेस लै श्री अवधेश को लाइ चिता चित सूल सौं हूले ।
जानकी जाई निसङ्क चढ़ी रतनाकर मानि दर्ई अनुकूले ॥
आनन नैन प्रसन्न महा लखि देव अदेव सबै सुधि भूले ।
गौरि गिरा मन मांहि कछो, मनौ पावक पुञ्ज में पङ्कज फूले ॥

शब्दों के करामाती कारीगर कविवर रत्नाकर जी ने रीतिकालीन कवियों जैसी ही अनोखी ओर चोखी सूझ पायी थी। इसके दो उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं। पावक पुञ्ज में पङ्कज खिला देना साधारण प्रतिभा वाले कवि का काम नहीं। ऐसी करामात तो कोई दूरकी कौड़ी ले आने वाला जादूगर ही दिखा सकता है। जान पड़ता है कि समस्यापूर्तियों से ही रत्नाकर ने कविता करने का श्रीगणेश किया था। सच पूछिए तो ‘शृङ्गार लहरी’ केवल इसी प्रकार के कवित्त और सवैयाँ का एक संग्रह है। ‘शृङ्गार लहरी’ तथा ‘प्रकीर्ण पद्यावली’ में निम्नोक्त पंक्तियों की शृष्टभूमि पर लिख गये कवित्त तथा सवैयाँ हमारे इस कथन के साक्षी हैं:—

१ बाँसुरी बजावै है

२ मारिबो पी कौ न सालत है, अब सालत सौति बचाइलौ तेरो ।

- ३ प्रथम समागम को बदलो चुकाए लेति ।
- ४ कपट किये हूँ प्यारे निपट भले लगौ
- ५ पावक पुंज में पंकज फूले
- ६ एकते हूँ गयी द्वै तस्वीरे
- ७ गोप कुल कुमुद निसाकर उदै भयौ ।
- ८ सीतल सुगंध मंद मारुत की लहरें ।
- ९ सूधी ते सहस गुनी टेढ़ी भौंह मीठी है ।
- १० प्रान परे सांकरे न हां करे न ना करे ।
- ११ मन लैहु रहौ पै बसौ मन ही ॥

भारतेन्दुयुग में समस्यापूर्ति का दौर खूब चलता रहा । बाद में भी बहुत दिनों तक काशी, प्रयाग तथा कानपुर इन दंगलों के अखाड़े बने रहे । रत्नाकर जी भी इन अखाड़ों के नामी पहलवान थे । उनके द्वारा की गई समस्याओं की पूर्तियाँ इस बात की साक्षी हैं । भारतेन्दु युग में भी कवित्त, सवैयाँ का दौर चलता रहा । भारतेन्दु जी थे वल्लभ-कुली-वैष्णव । इसलिए उन्होंने अष्टछाप के भजनानन्दी कावियों की तरह प्रगीत मुक्तकों की भी रचना की, परन्तु रत्नाकर इस पचड़े में नहीं पड़े । वे तो रीति-कालीन कवियों को अपना पथ प्रदर्शक बना चुके थे । अष्टछापी कवियों में तो नन्ददास ही उनके नेता थे ।

नन्ददास और रत्नाकर

नन्ददास के सम्बन्ध में “और कवि घड़िया, नन्ददास जड़िया” वाली उक्ति अनुचित नहीं जान पड़ती । नन्ददास ने अष्टछापी भजनानन्दी कवियों की तरह केवल घड़न्त ही नहीं

की प्रत्युत अपनी प्रत्येक रचना रीति ग्रन्थों को आदर्श मानकर सजायी तथा सवारी भी । केवल प्रगीत मुक्तकों तक ही अपना क्षेत्र सीमित नहीं रखा, प्रबन्ध काव्यों की भी रचना की 'रासपंचाध्यायी', 'रुक्मणी मंगल', आदि को हम प्रबन्ध-काव्य ही कहेंगे । 'भंवरगीत' तथा 'स्याम सगार्ह' मुक्तक काव्य होते हुए भी अपने में एक प्रबन्धात्मिकता लिए हुए हैं । अष्टछाप के भजनानन्दी कवियों की रचनाओं में अलंकार अपने आप ही आ गए । उन्होंने उन्हें केशव की तरह हथौड़ियों से घड़ने की चेष्टा नहीं की । नन्ददास ने अपनी रचनाओं में अलंकारों का प्रयोग उसी प्रकार किया जिस प्रकार कोई जड़िया अपने घड़े हुए आभूषणों में मोती, हीरा, पन्ना तथा नीलम आदि रत्नों की जड़ाइ करके उनके सौन्दर्य को और भी बढ़ा देता है । ऐसी दशा में उपर्युक्त युक्ति ठीक ही जान पड़ती है । अब देखना यह है कि रत्नाकर ने नन्ददास से लिया क्या ! रत्नाकर ने नन्ददास से लिया उसका प्रिय छन्द रोला ! रास-पंचाध्यायी, सिद्धान्त-पंचाध्यायी तथा रुक्मणी मंगल की रचना नन्ददास ने रोला छन्द में ही की है । समूचे भक्ति तथा रीतिकाल में इस छन्द का इतना प्रयोग किसी ने नहीं किया । नन्ददास से पूर्व इस छन्द की ओर किसी का ध्यान गया ही नहीं । इसलिए नन्ददास के पूर्ववर्ती कवियों ने इस छन्द में कोई प्रबन्ध काव्य नहीं लिखा । अपने इन ग्रन्थों के अतिरिक्त नन्ददास ने 'भंवर गीत' तथा 'स्याम सगार्ह' में भी इसी छन्द का प्रयोग किया है । रोला तथा दोहा के संयोग से नन्ददास ने प्रगीत मुक्तक की रचना करके इस छन्द के महत्व को और भी बढ़ा दिया ।

नन्ददास के इस परमप्रिय रोला छन्द पर रत्नाकर जी का असाधारण अधिकार था। अपने प्रबन्ध काव्यों की रचना में उन्होंने केवल इसी छन्द का उपयोग किया है। गंगावतरण, हरिश्चन्द्र, हिंडोला, कलकाशी, तथा समालोचनादर्श की रचना उन्होंने इसी छन्द में की है। इनमें रत्नाकर की भाषा नन्ददास से अधिक परिमार्जित, परिष्कृत और सुसंस्कृत जान पड़ती है।

देव और रत्नाकर

देव का उक्ति वैचित्र्य तथा भाव गाम्भीर्य का भी रत्नाकर जी पर काफी प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपने कितने ही कवित्त सवैयाओं की पृष्टि-भूमि देव को ही आदर्श मानकर तैयार की। अब तनिक देव तथा रत्नाकर पर एक तुलनात्मक दृष्टि डालकर देखिये:—

“जब ते कुँवर कान्ह रावरी कला निधान,

कान परी वाके कहूँ सुजस कहानी सी।

तब ही ते ‘देव’ देखी देवता सी, हँसती सी,

रीझिती सी, खोजितो सी, रुठिती रिसानी सी ॥

झोही सी झली सी, झीन लीनी सी झकि सी झिन

जकी सी, टकी सी, लगी थकी सी थहरानी सी।

बीधी सी बँधी सी, विष विभूझति विमोहित सी,

बैठि बाल वकति, विलोकती विकानी सी ॥”

(देव)

“सुनि सुनि ऊधव की अकह कहानी कान

कोऊ थहरानी कोऊ थान ही थिरानी है।

कहै 'रत्नाकर' रिसानी बर रानी कोऊ
 कोऊ बिलखानी बिकलानी बिथकानी है ॥
 कोऊ सेद सानी कोऊ भरे दग पानी है,
 कोऊ धूमि धूमि परि भूमि मुरझानी है ।
 कोऊ स्याम स्याम कहै, बहकि बिललानी कोऊ
 कोमल करेजो थामि सहज सुखानी है ॥”

(उद्धव शतक ३४)

घन-आनन्द और रत्नाकर

अपनी लाक्षणिकता के लिये घन-आनन्द जी का एक विशेष स्थान है। उनके शब्द-चयन में हम वही लाक्षणिकता पाते हैं जिसे आधुनिक साहित्य-मीमांसकों ने अभिव्यञ्जनावाद के नाम से विदेशियों की जूठन के रूप में ग्रहण किया है। घन-आनन्द के बाद रीतिकाल की परम्परा पर चलने वाले कवियों में केवल रत्नाकर ही एक ऐसे कवि हैं जिनमें हम लाक्षणिकता का अलौकिक सौन्दर्य इतनी मात्रा में पाते हैं। यहाँ इसके कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे—

“बङ्क बिधि लेख को न रेख रह जात तासु

दिव्य सिकता लै भाल में धसत जो”

गंगा की रेत का भी इतना महात्म्य है कि उसके प्रभाव से सारे पापों का नाश हो जाता है। अतः उसे माथे पर रगड़ने की कोई आवश्यकता नहीं, परन्तु ब्रह्मा की वक्रलिपि को मिटाने के लिए उसे मस्तक पर रगड़ना कवि आवश्यक समझता है। इसी बात को कितने सुन्दर तथा लाक्षणिक ढंग से ऊपर कहा गया है। घनआनन्द के समान ही रत्नाकर में विरोध मूलक वैचित्र्य भी यत्र-तत्र देखने को मिलता है जैसे:—

- क) “सूधे हूते सहसगुनी टेढ़ी भौंह मीठी है”
 (ख) “कर्पट किये हू प्यारे निपट भले लगों”

घनआनन्द फारसी के पहुँचे हुए विद्वान थे। रत्नाकर का भी फारसी पर कम अधिकार नहीं था। इसलिए दोनों ने मुहाविरों का प्रयोग करके भाषा में एक प्रकार की लाक्षणिकता उत्पन्न कर दी है।

बिहारी और रत्नाकर

रीतिकालीन कवियों में बिहारी भी रत्नाकर के पथप्रदर्शक हैं। जिस प्रकार कभी कभी बिहारी दूर की कौड़ी ले आता है उसी प्रकार ‘रत्नाकर’ भी भावनाओं के रत्नाकर की गहराई तक पहुँच जाते हैं। बिहारी के समान हम उनमें अनोखी सूझ पाते हैं। बिहारी का यह प्रसिद्ध दोहा:—

“मेरी भव बाधा हरो राधा नागरि सोय,
 जा तन की झाँई परे स्याम हरित व्युति होय ॥”

रत्नाकर के गंगावतरण की इन पंक्तियों का प्रेरक कहा जा सकता है:—

“दोउ दोउनि की प्रभा पाइ इक रंग हरियाने
 इक-मन इक-रुचि इक-प्राण इक-रस सरसाने ॥”

“बिहारी की स्याम हरित व्युति होय” वाली पंक्ति में जो लाक्षणिकता है, वही रत्नाकर की “दोउ दोउनि की प्रभा पाइ इक रंग हरियाने” में भी है। ‘प्रकीर्ण पद्यावली’ के अन्त में दिये गये दोहे इतने सुन्दर बन पड़े हैं कि वे बिहारी के दोहों से टक्कर ले सकते हैं। रत्नाकर ने बहुत से दोहों की रचना बिहारी के दोहों

के आदर्श पर की है। पर उन में भी उन्होंने अपनी अनोखी और चोखी सूझ के कारण अपनेपन की छाप लगा दी है। उदाहरणार्थ देखिये—

“कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाइ ।

वाह खाये बौरात है, यह पाये बौराइ ॥ (बिहारी)

सुबरन कनक प्रभाव तै, सुमन कनक कौ बीस ।

वह महीस के सीस, यह चढ़त ईस के सीस ॥ (रत्नाकर)

उनके सैकड़ों कवित्त तथा सवैये बिहारी के दोहों के साँचों में ढाले गये जान पड़ते हैं। बिहारी तथा अन्य रीतिकालीन कवियों के समान कविवर रत्नाकर भी मौज में आकर विपरीत रति का भी वर्णन कर गये हैं। इसका भी एक उदाहरण लीजिये—

“प्यारे परबीन को बनायौ नबला नवीन

नायक प्रवीन बनि आप उर लाए लेति ।

छलकै छबीलो ज्यों ज्यों भरन न देत अक्क

त्योही निसङ्क भुज भरि लपटाए लेति ॥

भूमि भूमि लेति सुख, चूमि चूमि लेति सुख

ठूमि ठूमि उरनि तै उरतै दबाइ लेति ।

पूरन प्रभा व विपरीत कौ प्रकासि प्यारी

प्रथम समागम कौ बदलौ चुकाए लेति ॥” ❀

बिहारी के समान ही रत्नाकर ने विरह-ताप का भी अत्युक्तिपूर्ण वर्णन किया है। विरहिणी गोपियों के अश्रुप्रवाह से भयभीत उद्धव की यह उक्ति इस सम्बन्ध में दृष्टव्य है—

❀ देखिये बिहारी—

परत जोर विपरीत रति, रुपि सुरति रनधीर ।

करत कुलाहल किंकिनि, धरत मौन मंजीर ॥

“ज्योंही कछु कहन सन्देश लग्यौ त्योंहि लख्यौ,
 प्रेम-पूर उमँगि गरे लौं चख्यौ आवै है ।
 कहे रतनाकर न पांव टिकि पावै नेकु,
 ऐसौ दग-द्वारिन सबेग कइयौ आवै है ।
 मधुपुरि राखन कौ बेगि कछु ब्यौत गढ़ौ,
 धाड़ चढ़ौ बः पै न जो पै गढ़यौ आवै है ।
 आयौ भाज्यौ भूपति भगीरथ लौं हौं तौ नाथ,
 साथ लग्यौ सोई पुण्य-पाप बढ़यौ आवै है ॥

(उद्धवशतक ११५)

रसलीन और रत्नाकर

रत्नाकर की कुछ रचनायें तो ऐसी बन पड़ी हैं कि जिनके कारण वे पूर्ववर्ती कवियों से भी बहुत आगे बढ़ गये हैं। तनिक रत्नाकर के इस दोहे:—

“भौं चितवन डोरे बरुनि असि कटार फंद तीर
 कटत फटत बांधत बिधत जिय हिय मन तन बीर”
 से रसलीन के निम्नोक्त दोहे की तुलना तो कीजिये:—
 “अमिय हलाहल मद भरे श्वेत, श्याम, रतनार,
 जियत मरत झुकि झुकि परत जेहि चितवत एकबारै”

यथासंख्य का जितना सुन्दर निर्वाह रत्नाकर जी के दोहे की चारों पंक्तियों में हुआ है वैसा रसलीन जी नहीं कर सके। रसलीन के दोहे की केवल तीन पंक्तियों में ही यथासंख्य का चमत्कार देखने को मिलता है।

पदमाकर और रत्नाकर

रत्नाकर पर सबसे अधिक प्रभाव पदमाकर का है।

उनके कवित्तों में 'कहे रत्नाकर' के स्थान पर यदि आप 'कहे पदमाकर' कर दें, तो सर्व साधारण उसे पदमाकर की ही रचना समझेंगे। सुनने में आया है कि स्वयम् रत्नाकर जी ने 'कहे रत्नाकर' के स्थान पर 'कहे पदमाकर' जोड़कर कुछ कवित्त अपने इष्ट मित्रों को सुनाये भी थे। उनके इन कवित्तों को सुनकर कुछ मित्रों को यह भ्रम हो गया कि ये कवित्त पदमाकर के ही हैं। पदमाकर उनके प्रिय काव्य थे, समालोचनादर्श में एक स्थान पर उन्होंने लिखा भी है:—

“सब्द माधुरी सक्ति प्रबल मानत सब नर

जैसे हो भवभूति भयौ तैसो पदमाकर ॥”

रत्नाकर की गंगालहरी पर तो स्पष्ट रूप से पदमाकर की गंगालहरी का प्रभाव लक्षित होता है। यदि आप रत्नाकर और पदमाकर की गंगालहरियों का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करें तो आपको उपर्युक्त कथन की सत्यता पर विश्वास करना पड़ेगा। उदाहरणार्थ यहाँ दोनों के एक एक कवित्त को तुलनात्मक दृष्टि से देखिये:—

विधि के कमण्डल की, सिद्धि है प्रसिद्धि यही ।

हरि पदपंकज प्रताप की लहर है ।

कहै पदमाकर गिरीस सीस मण्डल के ।

मुण्ड की माल तत्काल अघहर है ॥

भूपति भगीरथ की सुपथ, पथ ।

जन्हु जप जोग फल फैल की फहर है ॥

छेम की छहर गंगा, रावरी लहर ।

कलिकाल को कहर, जम जाल को जहर है ॥”

:(पदमाकर)

“विधि बरदायक की सुकृति-समृद्धि-वृद्धि ।

संभु सुरनायक की सिद्ध को सुनाका है ।

कहै रत्नाकर त्रिलोक सोक नासन कौं ।

अतुल त्रिविक्रम के विक्रम की साका है ॥

जम-भय-भारी तम-तोम निवारन कौं ।

गंग यह रावरी तरंग तुंग राका है ।

सगर कुमारनि के तारन की सेनी सुभ ।

भूपति भगीरथ के पुन्य की पताका है ॥

(गङ्गालहरी १० “रत्नाकर”)

रत्नाकर में मौलिकता

यह ठीक है कि रत्नाकर ने अपने पूर्ववर्ती कवियों से बहुत कुछ लिया है। पर इसका अभिप्राय यह नहीं कि उन्होंने दूसरों की चोरी की है अथवा डाका डाला है। जब एक ही विषय पर दो कवि अपने विचार प्रकट करते हैं, तो कभी कभी उनके विचार भी टकरा जाते हैं। इसप्रकार का विचार साम्य साहित्य में चोरी नहीं समझा जाता। सौ सयाने एक मत के सिद्धान्तानुसार दो व्यक्ति चिन्तन द्वारा एक ही लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। कभी २ किसी एक विषय पर जब कोई कवि अपने विचार प्रकट करता है, दूसरा भी उसके विचारों अथवा उसकी विचार प्रतिवादन शैली से प्रभावित होकर उसके विचारों को अपने ढंग से कहने का प्रयत्न करता है। साहित्य संसार में इस प्रकार की चोरियाँ सदा से होती आयी हैं और होती रहेंगी। आलोचकों की अदालत ने इन चोरों अथवा लुटेरों के विरुद्ध कोई फतवा नहीं दिया बल्कि पीठ ठोकी है। लेकिन ऐसा होता है कब ? जब

वह दूसरों की जमा-पूँजी को हजम कर जाय, और हजम करके डकार भी न ले ! उस पर अपने पन की छाप लगा दे; उसमें उसका व्यक्तित्व बोल उठे । संसारभर का समस्त साहित्य इस प्रकार की चोरियों से भरा पड़ा है । हजारों वर्ष से मनुष्य चिन्तन करता चला आया है; जीवन के सुख-दुःख दूसरों को सुनाता चला आया है । इतना होने पर भी वह कोई नयी बात नहीं कह सका । दुनिया बदली, पर उसके सुख-दुःख वही हैं । इसीलिए वह पुरानी लकीर पीटने के अतिरिक्ति और कर ही क्या सकता है ? जब तब वह जीवन-मरण की समस्या को हल न कर लेगा, तब तक शायद कुछ नया कह भी नहीं सकेगा । बातें तो वही पुरानी हैं परन्तु उनके कहने का ढंग बदल गया है, साज बदल चुका है, स्वर और राग वही हैं । ऐसी दशा में रत्नाकर से, जिसका स्वर भी वही है, और साज भी वही है कैसे यह आशा की जा सकती है कि वह कोई नयी बात कहें ? फिर भी प्राचीनता के इस नये पुजारी ने पुराने साज पर बंधी हुई पुरानी तर्ज पर नयी तान छेड़ी है । पुराने कवियों के भावों को ग्रहण करके भी उनमें एक नयापन ला दिया है ।)

प्राचीन कविता में उपनाम

प्राचीन कवि मुक्तक छन्दों में अपना नाम अवश्य डालते थे । इसका कारण था कि कोई उनकी रचनाओं को चुरा न ले । प्रेस-युग में तो ऐसा सम्भव नहीं, पर प्राचीन काल में ऐसा होना कोई बड़ी बात न थी । रत्नाकर जी ने भी उद्धव-शतक, शृङ्गार लहरी, वीराष्टक, रत्नाष्टक, प्रकीर्ण-पद्यावली के कवित्त तथा सवैयाओं में अपना नाम डाल दिया है । अधिकांश कवि-

ताओं में “कहै रतनाकर” इसी उद्देश्य को सामने रख कर प्रयुक्त हुआ है। कहीं ‘रत्नाकर’ का प्रयोग श्लेष के रूप में भी हुआ है। इसे हम उर्दू का प्रभाव कह सकते हैं। उर्दू गजल के जिस शेर में कवि अपना उपनाम डालते हैं, उसे मक़ता कहते हैं। मक़ता उर्दू गजल की जान होता है, क्योंकि इस शेर में कवि अपना उपनाम कभी-कभी विशेष चमत्कार के साथ डालता है। यह चमत्कारोत्पादन होता है—श्लेष तथा यमक के रूप में। उर्दू काव्य दाग अपनी इस विशेषता के कारण बहुत प्रसिद्ध हैं। उनका एक शेर देखिये—

“पड़ा फलक़ को कभी-दिल-जलों से काम नहीं।

जला के खाक न करदूँ तो दाग़ नाम नहीं ॥”

रत्नाकर भी उर्दू की इस विशेषता से परिचित थे, इसी-लिए उन्होंने अपने उपनाम का श्लेष के रूप में बहुत सुन्दर उपयोग किया है। देखिये—

“रस रतनाकर सनेह निरुवार्यौ जाहि

ता कच को हाय जटाजूट बरिबौ कहौ ॥”

उद्धव-शतक ३६

देखिये इसी प्रकार ‘बिहारी रत्नाकर’ में टीकाकार की ओर से लिखे गये मङ्गलाचरण के इस दोहे में भी ‘रत्नाकर’ श्लेष के रूप में प्रयुक्त हुआ है—

“कृपा कौमुदी की करौ, श्री वृजचन्द प्रकास।

उमगै रतनाकर हियै, बानी विमल विलास ॥”

किसी-किसी कवित्त तथा सवैया में रत्नाकर नहीं आया है, इसका कारण है पद्य में विचारों का आधिक्य। उदाहरण के लिये उद्धवशतक का ३५वाँ कवित्त देखिये।

यहाँ उपनाम के सम्बन्ध में एक बात और दृष्टव्य है वह यह कि हिन्दू कवि चाहे रीतिकाल के हों चाहे भक्तिकाल के, वे कविता में अपना नाम ही डालते थे, उसके लिये उपनाम नहीं रखते थे। रसखान, सैयद गुलामनबी रसलीन तथा अली-मुहीबखाँ, प्रियतम आदि कवियों ने उपनाम अवश्य रखे। इसका कारण यह था कि उनके नाम कवित्त तथा सवैयाओं में जम कर नहीं बैठते थे। अतः यह स्पष्ट है कि उपनाम ग्रहण की यह प्रथा पद्माकर ने उद्भूत से ली।

कवि ने मुक्तक काव्यों में ही अपने उपनाम का प्रयोग नहीं किया प्रत्युत अपने प्रसिद्ध काव्य 'गंगावतरण' में भी पौराणिक ढङ्ग से अपने नाम 'रत्नाकर' का प्रयोग किया है। देखिये—

“त्रेता जुग मुनि बालमीकि, द्वापर पारासर ।

कलि में यह चरित चारु गैहें रत्नाकर ॥”

इसी प्रकार गङ्गावतरण की समाप्ति पर—

“लहि श्री जगदम्ब निदेस, वर गङ्गा गिरा गन नाथ वर ।

यह रत्नाकर की कोन्यौ, गङ्ग चरित सुभ सौख्य कर ॥”

प्राचीन कवि अपने काव्य की समाप्ति पर ग्रन्थ-समाप्ति सम्बत् का [निदेश विशेष ढङ्ग से कराते थे। रत्नाकर जी ने भी उसी परम्परानुसार अपने कुछ काव्य-ग्रन्थों में ग्रन्थ-समाप्ति सम्बत् दिये हैं। जैसे हिंडोला में—

मन इन्द्रिय अरु भक्ति सहित गोपालहिं लाग्यौ ।

तिहि तरङ्ग में रचि भूलन अति रुचिर भुलायौ ॥

इस प्रकार यहां प्राचीन परिपाटी के अनुसार मन, इन्द्रिय, भक्ति तथा गोपाल, बाईं ओर से जोड़कर पढ़ने पर सम्बत १९५१ निकल आता है। गंगावतरण में भी उसका ग्रन्थ-समाप्ति सम्बत इस प्रकार दिया गया है:—

सम्बत उनइस मै अमी, गुरु पुनों भृगुवार ।

गंग-अवतरन काव्य यह, पूरन भयौ उदार ॥

नख-शिख वर्णन तथा नायिका-भेद:—

रीतिकालीन कविता का मुख्य विषय रहा है, नख-शिख वर्णन तथा नायिका-भेद। कविवर रत्नाकर ने इन सबका वर्णन भी दिल खोलकर किया है। नेत्रों का वर्णन करते हुए वे कहते हैं:—

• कापें तेरे दगनि की कही बड़ाई जाइ ।

त्रिभुवन जाके मुख बसै सों जिहि रख्यो समाइ ॥

आंखों की प्रशंसा में एक कवित्त भी देखिए:—

अंजन विनाहूँ मनरञ्जन बिहारि इन्हें,

गंजन हूँ खंजन-गुमान लटे जात हैं ।

कहे रत्नाकर बिलोकि इनकी त्यों नोक,

पंच बान बाननि के पानी घटे जात हैं ॥

स्वच्छ सुखा की समता की हम तासों खिले,

विविध सरोजनि सों हौज घटे जात हैं ॥

रंग है रे रंग तेरे नैननि सुरंग देखि,

भूलि भूलि चौकड़ी कुरंग कटे जात हैं ॥

खंडिता नायिका का वर्णन उन्होंने बहुत ही मार्मिक

किया है। नायक किसी अपनी अन्य 'चहेती' के यहां रत-जगा करके सबेरे लौट आया। उसकी चाल ढाल तथा रंग ढंग ने नायिका के सामने सारी पोल खोल दी, उसे देखकर चुटकी लेती हुई नायिका ने कहा:—

अंजन अधर औ कपोल पीक-लीक लसे,
 रसिक बिहारी बेस बानिक बने लगौ ।
 कहे रत्नाकर धरत डगमग पग,
 ताते मोहि मेरं हो वियोग में जगे लगौ ॥
 जानत जगत सब तैसों ही दिखात ताको,
 जैसों चसमों है जब जाके चष में लगौ ।
 नेह की निकाई छाई नैननि हमारै तातै,
 कपट किये हूँ प्यारे निपट भले लगौं ॥

रत्नाकर के इस कवित्त के साथ बिहारी के इस दोहे की तुलना कीजिये और देखिये दोनों में कितना साम्य है:—

पलन पीरु अंजन अधर, धरे महावर भाल ।
 आज मिले सो भली करी, भले मिले हो लाल ॥

रत्नाकर में युग-सन्देश:—

कोई भी कवि युग-प्रभाव से अपने को बचा नहीं सकता। रीतिकाल के अन्तिम प्रतिनिधि होते हुए भी रत्नाकर अपने को युग-प्रभाव से न बचा सके। भारतेन्दु-युग, जिसमें कि रत्नाकर जी का शैशव बीता था, ब्रज-वाणी में देश प्रेम के गीत सुनाकर आने वाली पीढ़ियों को एक नयी दिशा दिखा ही गये थे। ऐसी दशा में कविवर रत्नाकर का नखशिख वर्णन तथा नायक-

नायिका भेद तक ही सीमित रहना कैसे सम्भव हो सकता था ? उन्होंने देश प्रेम तथा जातीय प्रेम की सोयी हुई भावनाओं को भी जगाया । उनका 'वीराष्टक' जातीयता की भावनाओं को जागृत करता है । कितने ही फुटकर सवैया तथा कवित्त देश-प्रेम की भावनाओं से ओत-प्रोत हैं । उदाहरणार्थ यह सवैया देखिये:—

आरत होहु न भारतवासी संभारत दुख सबै ठिलि जात है ।
 त्यों रत्नाकर हाथ औ माथ हिलाये हिमाचल हूँ हिलि जात है ॥
 काह न होत उछाहनि सौं मृदु कीट हु पाहन में पिलि जात है ।
 आरस त्यागि के डारस कोन्है सुधारस पारस हूँ मिलि जात है ॥

रत्नाकर में रीतिकाल की पूर्णता:—

हम एक प्रकार से रत्नाकर में रीतिकाल की पूर्णता पाते हैं । अपने पथ-प्रदर्शक सभी कवियों की विशेषताएं उनमें थीं । देव, घनआनन्द तथा पद्माकर के समान वे कवित्त तथा सवैया की रचना में सफलता प्राप्त करते हैं । दोहे पर भी बिहारी के समान ही उनका अधिकार हम पाते हैं, यह दूसरी बात है कि इस छन्द में उन्होंने अधिक रचना नहीं की । उक्त वैचित्र्य तथा अत्युक्ति-पूर्ण वर्णनों में यदि वे बिहारी से आगे नहीं बढ़ते, तो पीछे भी नहीं रहते ।

रीतिकालीन कवियों की तरह केवल मुक्तक तक ही उनका क्षेत्र सीमित नहीं रहा । उन्होंने प्रबन्ध काव्यों की रचना भी की । भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था । उन्होंने शुद्ध ब्रजभाषा में तो रचना की ही है, संस्कृत-निष्ठ ब्रज भाषा में भी

उनका सांसारिक ज्ञान नहीं के बराबर था । रत्नाकर में हम यह कमी नहीं पाते । उनका सांसारिक ज्ञान बहुत विस्तृत है । हर चीज को गहरी-दृष्टि से देखते हैं । उदाहरणार्थ देखिए:—

कहै रत्नाकर वियोग-आगि सारन कौ,

ऊधौ हाय हमकों बयारि भखिबौ कहौ ।

योग साधना में प्राणावायु का रोका जाना प्रसिद्ध है । गोपियाँ प्राण-वायु को रोककर विरह वह्नि को प्रज्वलित नहीं करना चाहती । देखिये कवि ने इसी बात को उपर्युक्त पंक्तियों में कितनी सुन्दरता के साथ कहा है ।

रत्नाकर की भक्ति भावना

ज्ञान और भक्ति

अनन्तकाल से मानव यह जानने के लिये प्रयत्नशील रहा कि इस विशाल विश्व का निर्माण किस कलाकार द्वारा हुआ है। कौन सी वह शक्ति है जिसके इंगितों पर प्रकृति-नटी का प्रत्येक कार्य उचित समय पर होता है। चिन्तनशील मानव कभी सोचता है मैं क्या हूँ ? जो मैं देख रहा हूँ, वह क्या है ? मेरा तथा जो मैं देख रहा हूँ उस सबका बनानेवाला कौन है ? इस कौन को ? जानने के लिये अनन्तकाल से प्रयत्नशील होते हुए भी मानव यह नहीं जान पाया कि वह कौन सी शक्ति है ? जिसके द्वारा यह सब हो रहा है। स्वयम् अल्प होते हुए भी चिरकाल से जिज्ञासु मानव उस असीम और अनन्तसत्ता को जानने के लिए प्रयत्नशील है। अनन्तकाल से प्रयत्न करते-करते उस अनन्त तथा असीम सत्ता तक पहुँचने के लिए जिज्ञासु मानव ने कुछ मार्ग निकाल ही लिए हैं। इस प्रकार उस असीम सत्ता तक पहुँचने के लिए अनेक मार्ग हैं, जो मार्ग जिसे अच्छा लगा वह उसी पर चल पड़ा। फिर भी उस अखिलेश्वर तक

पहुँचने का सुगम मार्ग है भक्ति !

ज्ञानमार्ग सब मार्गों से कठिन है। क्योंकि उसमें आत्मचिन्तन द्वारा ही उस अनन्त और असीम सत्ता तक पहुँचा जाता है। वह भी अपने अस्तित्व को खोकर, खुदी को मिटाकर। केवल चिन्तन-द्वारा उस अनन्त और असीम सत्ता को प्राप्त करना, है भी तो कठिन ! जिसके विषय में वेदादिशास्त्रों ने 'नेति नेति' कहकर अपनी अल्पज्ञता साफ प्रकट कर दी है। बुद्धि उस असीम तक पहुँचने की कोशिश तो करती है पर सफल नहीं होती। सामने तर्क की एक बहुत बड़ी दीवार खड़ी हो जाती है। ज्ञानमार्ग की दुर्गमता पर प्रकाश डालते हुए डाक्टर 'रसाल' अपने गोपी-उद्धव-सम्वाद में गोपियों द्वारा कहलाते हैं:—

“पद पद जामें किती संका-साँपिनी हैं भरी।

भ्रम के भुजंगनि कौ बृंद विष वारौ है।

तर्कन वितर्कन के कठिन कटीले-धने।

भारी झार झंकर कौ प्रखर पसारौ है।

संस्थादि केते परिपंथिनि कौ ठौर ठौर,

पंथिन कै मूसिबै को जुरत अखारौ है।

रजतम-ताम-भरो बात के बवंडर सौं,

अलख अरूप ज्ञान-पंथ यों तिहारौ है ॥”

सचमुच ज्ञानमार्ग है ही बड़ा दुर्गम, “पद पद जामें किती संका-सापिनी हैं भरी।” ऐसे विकट ज्ञान मार्ग में सर्व साधारण का पहुँच सकना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

योगाभ्यास द्वारा बलपूर्वक इन्द्रियों को विषयों की ओर

से हटाकर उस असीम तथा अनन्त की ओर केन्द्रित करना भी तो हंसी मजाक नहीं। इस कार्य में बड़ी साधना और तपस्या की जरूरत है। इन सब जटिलताओं को देख कर ही तो, भगवान के भक्तों को अपना रास्ता सब से अलग तैयार करना पड़ा। मुक्ति के पीछे सांसारिक सुखों को त्यागना है भी तो कठिन ! और फिर जब भगवान बिना किसी साधन के इसी संसार में मिल सकता है। इस सम्बन्ध में तुलसी ने ठीक ही कहा है:—

“अस बिचारि हरि भगत सयाने

मुक्ति निरादर भगति लुभाने।”

योगसाधन की जटिलताओं की ओर संकेत करते हुए उद्धव शतक की गोपियों ने इसी लिए तो कहा था:—

“जो है अभिराम स्याम चित की चमक ही मैं ।

और कहा ब्रह्म की जागइ जोति जो हंगी ।

कहै रतनाकर तिहारी बात ही सौं रुकी ।

सौंस की न सौंसति कै औरों अवरोहेंगी ॥

आपुही भई है मृगछाला ब्रजबाला सूखि ।

तिन पै अपर मृग छाला कहा सांहेंगी ।

ऊधौ मुक्ति-माल बृथा मदत हमारे गरै ।

कान्ह बिना तासौं कहौ काकौ मन मोहेंगी ॥”

यह चंचल मन सांसारिक सौन्दर्य तथा विषय-वासनाओं की ओर आकर्षित होता है। अतः इसे सांसारिक विषय वासनओं से हटाने के लिए इसी के समान किसी परम सुन्दर आलम्बन की आवश्यकता है। आचार्य वल्लभ ने त्रैलोक्य सुन्दर भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति को प्रधानता दी थी। सचमुच इस

सांसारिक सौन्दर्य से मन को हटाने का एक मात्र उपाय है मुरली मनोहर की मंजुल मूर्ति को मन-मन्दिर में स्थापित करना तथा उनकी ललित लीलाओं का गान करना ।

[अहा कितनी पावन है वह ब्रज भूमि । जहाँ भुवन मनमोहन श्रीकृष्ण ने ललित लीलाएँ की थीं । और की तो बात ही क्या, स्वयम् नटराज शंकर, नटवर नटनागर की उस जन्म भूमि के सरस सौन्दर्य पर कितने मुग्ध हैं । इसे रत्नाकर के शब्दों में सुनिये:—

“डारे कहुँ शृंगी भृंगी गन गुनि टारे कहुँ ।

बरद बिचारे कौं बिसारे विंचरन मैं ।

आनन्द-अपार पारावार के हलोरनि मैं ।

दौरि डगमग पग धारत लगन मैं ॥

पुलक गँभीर प्रेम विह्वल सरीर छये ।

नीर अधखुले अनिमेष दग तन मैं ।

चूमि चटकाई अँगुरिनी रसघूमि भूमि ।

भांकी लेत ललकि पिनाकि मधुवन मैं ॥”

भक्त भय हारी वृन्दावन विहारी, श्रीकृष्ण मुरारी के अलौकिक सौन्दर्य को देख कर ब्रजबालाएँ ठगी सी रह जाती थी कोई कोई तो लोकलाज छोड़कर अपनी सखी से कह उठती थी:—

“ठाढ़ी अबै चलि होहु कहुँ न तु बीर न भीर मैं पांव धिरैंगे ।

हाट औ बाट अटारिन के घर द्वारिन के सब ठाम धिरैंगे ॥

देखन कौ रतनाकर के बस नैकु मैं एक पै एक गिरैंगे ।

धेनु चराइ बजावत बेनु सुन्यौ इहिं गैल गुपाल फिरैंगे ।

भगवान श्रीकृष्ण वास्तव में सौन्दर्य के देवता थे । ऐसा अलौकिक सौन्दर्य किसे मिला है संसार में ! तभी तो उनके वेणु-वादन को सुन कर ब्रज-बालाएँ कुल-मर्यादा को त्याग कर उन्हीं के पीछे हो लेतीं थीं । उनकी मधुर मुरली का वर्णन करते हुए कविवर रत्नाकर कहते हैं—

“बैठे भङ्ग छानत अनङ्ग-अरि रङ्ग रमे,
अङ्ग अङ्ग आनन्द तरङ्ग छबि छावै है ।
कहै ‘रतनाकर’ कछु रु रङ्ग ढङ्ग औरै,
एकाएक मत्त ह्वै भुजङ्ग दरसावै है ॥
तूँ बा तोरि साफी छोरि मुख विजया सौँ मोरि,
जैसे कंज-गन्ध पै मलिंद मंजु धावै है ।
बैल पै बिराजि सङ्ग सैल-तनया लै बेगि,
कहत चलै यों कान्ह बासुरी बजावै है ॥

ऐसे भुवन-मनमोहन श्रीकृष्ण को छोड़कर मन कहीं अन्यत्र जा भी तो नहीं सकता, यदि जाता भी है तो फिर चौरासी की फाँसी से छुटकारा कहाँ ? भला कौन ऐसा होगा जो ऐसे त्रैलोक्य सुन्दर भगवान की भक्ति को छोड़ कर योग साधना के पचड़े में पड़े । अथवा कण्टकाकीर्ण ज्ञान मार्ग पर पदार्पण करे । वे त्रैलोक्य सुन्दर भगवान कैसे हैं, क्या हैं, इसकी बाँकी-भाँकी देखनी हो तो कविवर रत्नाकर का यह कवित्त सुनिये—

“सो तौ करै कलित प्रकास कला सोरस लौं,
यामें वास ललित कलानि चौगुनी को है ।
कहै रतनाकर सुधाकर कहावै वह,
याहि लखै लगत सुधा कौ स्वाद फोकौ है ॥

समता सुधारि और विषमता विचारि नीदै,
ताहि उर धारि जो विसद ब्रज-रीकौ है ।
चारु चांदनी कौ नीकौ नायक निहारि कहौ,
चांदनी कौ नीकौ कै हमारे चांद नीकौ है ॥”

भक्तों के यह परम सुन्दर भगवान् भुवन-मन-मोहन होने के साथ ही साथ भक्तवत्सल भी हैं। भक्त का कष्ट दूर करने के लिए वे बराबर धराधाम पर अवतार लेते हैं। भक्तों की पुकार सुनते ही नंगे पैर दौड़ने वाले भगवान् का चारु-चित्रण रत्नाकर ने अपनी ललित लेखनी द्वारा इस प्रकार किया है—

“सुण्ड गहि आतुर उबारि धरनी पै धारि,
बिस बिसारि काज सुर के समाज कौ ।
कहै रतनाकर निहारि करुना की कोर,
बचन उचारि जो हरैया दुखसाज कौ ॥
अम्ब-पूरि दगनि बिलम्ब आपनोई लेखि,
देखि देखि दीह छत दन्तनि दराज कौ ।
पीत पट लै लै कै अँगोछत शरीर कर—
कंजनि साँ पोंछत भुसुण्ड गजराज कौ ॥”

ऐसे करुणा-वरुणालय भगवान् को पाकर योग साधना तथा कष्टकाकीर्ण ज्ञान मार्ग पर चलने की आवश्यकता ही क्या? भवसागर को पार करने के लिए केवल उन्हीं पाद-पद्मों की थोड़ी कृपा चाहिये। रत्नाकर को भक्त-भय-हारी की इसी अकारण कृपा पर विश्वास है, तभी तो जरा गर्व के साथ कहता है—

कहत सिहाइ केते प्रतिभा-प्रभाइ पेखि,
 साचौ यह सुघर सपृत सारदा कौ है ।
 केते कहें मोहि जोहि जागत प्रताप ताकौ,
 अरि उर-साल यह लाल गिरिजा कौ है ॥
 सब सुख साधना की सिद्धि मनमानी सदा,
 केते लखि लेखत लड़ैतौ कमला कौ है ।
 एहो ब्रजराज इमि सकल समाज माहिं,
 रङ्ग रतनाकर पै रावरी कृपा को है ॥

वह कर्मणा-वर्मणालय भक्तों की करुण पुकार सुन कर
 अधीर हो जाता है । रतनाकर ने भक्त-भय-हारी के इसी स्वरूप
 का चित्रण इन शब्दों में किया है —

औचक चकित सब जादव सभा के नाथ,
 बोलि उठे कौरव गुमान अब छूटैगौ ।
 कहे रतनाकर बहु र पग रोपि कह्यौ,
 पाण्डव बिचारनि कां दुख अब छूटैगौ ॥
 अम्बर कौ काल कां हली कौ हरि हरहुं को,
 सन्तत अनन्तता विधान जब छूटैगौ ।
 छूटैगौ हमारौ नाम भक्त-भीर-हारी जब,
 द्रुपद-सुता कौ चीर छोर तब छूटैगौ ॥

भगवान् भक्तवत्सल हैं, अपने भक्तों पर सदैव उनकी
 कृपा रहती है । उनकी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए वे अपनी
 प्रतिज्ञा भङ्ग कर देते हैं । भक्त-शिरोमणि भीष्म भक्त-भय-
 हारी के इस स्वभाव से परिचित थे, तभी तो उन्होंने यह प्रतिज्ञा
 की थी—

कैतौ प्रीति-रीति की सुनीति उठि जायगी कै,

आज हरि प्रन की प्रतीति उठि जाइगी ।

देखिये कितना भरोसा है भक्त को अपने भगवान पर ।
इसी बल-बूते पर तो भीष्म भक्त-भय-हारी को बार बार ललकारते
हैं । कविवर रत्नाकर ने भक्त भीष्म की इस ठिठाई का वर्णन
इन शब्दों में किया है—

रोकि भर रंचक अरोक वर वाननि की,

भीषम यों भाष्यौ मुसकाइ मन्द स्वर में ।

चाहत बिजै को सारथी जौ कियौ सारथ तौ,

वक्र करौ भृकुटी न चक्र करौ कर में ॥

एक ओर भक्त की रक्षा, दूसरी ओर अपनी शस्त्र न
उठाने की प्रतिज्ञा तथा भक्त भीष्म के प्रण की रक्षा, इन सब
ने मिल कर भक्त-भय-हारी को एक विचार सङ्कट में डाल दिया ।
कविवर रत्नाकर ने भक्त-भयहारी की इस स्थिति का चारु-चित्रण
इन शब्दों में किया है—

भीषम के बानन की मार इमि मांची गात,

एकहुँ न घात सब्य साची करि पावै है ।

कहे रतनाकर निहारि सो अधीर दशा,

त्रिभुवन-नाथ-नैन नीर भरि आवै है ॥

बहि बहि हाथ चक्र ओर ठहि जात नीठि,

रहि रहि तापै वक्र दीठि पुनि धावै है ।

इत प्रन पालन की कानि सकुचावै उत,

भक्त भय घालन की बानि उमगावै है ॥

भक्त-भय हारी की इसी भक्त-वत्सलता को देखकर तो रत्नाकर जरूरत से ज्यादा ढीठ हो गये हैं क्योंकि वे जानते हैं कि भक्तों पर कृपा करने वाले भगवान अपनी मर्यादा को तोड़कर नरक गामी पापियों को भी चौरासी की फाँसी से छुड़ा सकते हैं। इसीलिए तो वे जरा कड़ाई के साथ पूछते हैं:—

मान्यौ मरजात सबै आपनी रचाइ पर,

यह तो बताओ कृपा कौन की बनाइ है।

रत्नाकर अपने पाप-पुण्य के खाते देख चुके हैं वे जानते हैं कि चौरासी की फाँसी से छुटकारा पाना कठिन है। यम-यातना का दारुण दृश्य उनके सामने उपस्थित है। यह सब जानते हुए भी वे दूसरे पापियों की ओर से वकालत करते हुए कहते हैं:—

एहो वीर पातकी अधीर जनि हांडु सुनौ,

यह तदवीर भीर रावरी भजावैगी।

भाषै यहै आगे हूँ अभागे हमसों जो जाहि,

याहि एक बात घात सकल बनावैगी ॥

पहलै हमारे सरदार रतनाकर की,

पातक-अपार-परतार पार पावैगी।

जैह बस चौकड़ी अनेक जुगवारी बीति,

पारी फेरि जांच की तिहारी नाहि आवैगी ॥

वे जानते हैं कि मुझ जैसे पापी के सामने दूसरे पापी हैं क्या चीज ! यदि मेरे पापों का खाता खुल गया तो:—

केते मनु अन्तर निरन्तर व्यतीत ह्वै हैं,

केती बित्रगुप्त जम औधि टुटि जायगी।

कहे रतनाकर खुद्यों जो पाप खाता मम,
 तों गनि बिधाताइ की आयु खुटि जायगी ॥
 जेहे बाँचि-बृम्हि अचकी ना लिपि भाषा नेकु,
 आरें पाप पुण्य परिभाषा जुटि जाइगी ।
 लाहु लाहि संसय काँ संसय विना ही बस,
 पापिनि की मण्डली अदण्ड छुटि जायगी ॥

साथ ही काव्य यह जानता है कि जो कुछ वह कर रहा है उसकी प्रेरक कोई दूसरी ही शक्ति है, तथा ता वह कहता है:-

सोइ सो किये हैं जो जो करम कराये आप,
 निनपै भले कि औ बुरे की छाप छापौ ना ।
 कहे रतनाकर नचाइ चित चाह्यो नाच,
 काच पूतरी पैं गुन दोष आप आपौ ना ॥
 खोटे खरे भेद औ प्रभेद धरि राखौ उतै,
 बिबस बिचार पै बृथा ही थापै थापौ ना ।
 थापौ जहो भावै तुम्है थापिबौ हमें पै नाथ,
 साथ पै हमारे पाप-पुण्य थाप थापौ ना ॥

रत्नाकर भी तुलसी के समान समन्वयवादी भक्त हैं, वैष्णव होते हुए भी अन्य देवताओं के प्रति भी उसी प्रकार श्रद्धा रखते हैं। एक सच्चे वैष्णव होने के कारण कविपुण्यतोया विष्णुपदी भगवती भागीरथी के प्रति भी अगाध श्रद्धा है। गंगालहरा तथा गंगावतरण कवि की इसी भावना के परिचायक हैं।

रत्नाकर पुरानी परिपाटी के कवि थे। उनका विश्वास था कि प्रतिभा दैविक शक्ति की देन है। इसलिए वे सोई हुई

प्रतिभा को जागृत करने के लिये वीणा-पाणी से प्रार्थना करते हैं। राजकीय भ्रष्टाचारों में पड़े रहने के कारण कवि वर्षों तक वीणा-पाणी की आराधना न कर सका। तब अवधेश्वरी के बार-बार आग्रह करने पर जब गंगावतरण की रचना के लिए अपनी लेखनी उठाने लगा तो स्वयम् वाणी ही अपने लड़ते लाल पर कृपा करने के लिए कमला और उमा के साथ धरा धाम पर प्रकट हुई और बोली:—

कहति गिरा यों गुनि कमला उमा सों चलौ,

भारत मही में पुनि मंजु छवि छाजै हम ।

राखैं जो न नेकु टेक जन मन रंजन को,

हरि हर विधि की वृथा ही बाम बाजै हम ॥

माख मानि बैठयौ ऐंठि लाड़िलौ हमारौ ताकौ,

करि मनुहार सुधाधार उपराजै हम ।

साजै सुख सम्पति के सकल समाज आज,

चलि रत्नाकर कौ नैसुक निवाजै हम ॥

‘माख मानि बैठयौ ऐंठि लाड़िलौ हमारों ताको’ तथा ‘चलि रत्नाकर कौ नैसुक निवाजै हम’ में कितनी वात्सल्यमयी व्यंजना है, यह बताने की आवश्यकता नहीं।

इस बुद्धि प्रधान युग में जबकि प्रत्यक्ष वादी मानव ईश्वर तक को तिलांजलि दे चुका हो, धर्म का भ्राष्ट्र कर चुका हो क्या रत्नाकर जैसे भावुक भक्तों का होना आश्चर्य की बात नहीं है? उन जैसी भक्ति भावना इस यथार्थवादी युग में दुर्लभ है। भक्ति के रंग में रंगी हुई रत्नाकर की कविता कामिनी के सामने प्राचीन भक्त कवियों की कविता भी फीकी जान पड़ती है।

रत्नाकर पुराण-परिचय

धार्मिक भावनाओं के प्रबल होनेके कारण भक्त-प्रवर रत्नाकर ने इतिहास पुराण का भी गहन तथा गम्भीर अध्ययन किया था। उनके पौराणिक ज्ञान की व्यापकता प्रायः उनकी सभी रचनाओं पर है। इसी अध्ययन के बल से वे गंगावतरण में भागवती पण्डितों की शैली ला सके हैं, उनके अधिकांश कवित्त और सवैयाओं की पृष्ठभूमि किसी न किसी पौराणिक गाथा पर आधारित है उदाहरणार्थ देखिये:—

आज बड़े भागनि मिलेंगे ब्रजराज आइ,
साज सुख सम्पत्ति के सिंगरे सजाइ दै ।

कहे रतनाकर हमारे अभिलाष लाख,
रजनी रंचक ताहि सजनी बढाइ दै ॥

ढूँढि के अगस्त कौ बिनै करि बुलाई वेगि,
कैसेहूँ बुझाइ ऐसौ बानक बनाइ दै ।

विन्ध्याचल अचल परयौ है चलि जातै जाइ,
ओटि उदयाचल कौ मचल मचाइ दै ॥

रत्नाकर की दार्शनिकता

भक्त प्रवर रत्नाकर की दार्शनिकता सन्तों के सुने सुनाये ब्रह्म-ज्ञान पर ही अवलम्बित नहीं है। उनका दार्शनिक ज्ञान अत्यन्त गूढ़ तथा गम्भीर था। अध्ययन, चिन्तन तथा मनन के द्वारा उन्होंने उसका विकास किया था। उनकी रचनाओं में जो दार्शनिक पारिभाषिक शब्द आये हैं, वे परिचायक हैं इस बात के कि वे सुलभे हुए दर्शनशास्त्री थे।

भाषा और शैली

क्या रत्नाकर की भाषा शुद्ध ब्रज-भाषा थी ?

रीतिकालीन कवियों ने भाषा के साथ बहुत कुछ मनमानी की है। शब्दों को आवश्यकतानुसार तोड़ा-मरोड़ा तथा उनके रूप विकृत कर दिये। भाषा के साथ मनमानी किये जाने का कारण था कि उस समय ब्रज-भाषा को काव्य-भाषा के रूप में स्वीकार कर लिया गया था। चाहे कोई कवि ब्रज-भाषा-भाषी हो अथवा न हो उसे कविता ब्रज-भाषा में ही करनी पड़ती थी। ब्रज-भाषा-भाषी न होने के कारण बहुत से कवि अपनी मातृभाषा के प्रभाव से अपने को मुक्त न कर सके। ब्रज-भाषा ज्ञान के लिए ब्रज में निवास करना आवश्यक नहीं था। इसके लिए कुछ कवियों को पथप्रदर्शक मान लिया गया था। दास जी ने इस सम्बन्ध में साफ ही कह दिया है:—

सूर, केशव मण्डन बिहारी कालिदास ब्रह्म,

चिन्तामणि, मतिराम, भूषण सुजानिए ।

लीलाधर, सेनापति निपट निवाज निधि,

नीलकण्ठ, मिश्र सुखदेव देव मानिए ॥

आलम, रहीम रसखान सुन्दरादिक,

अनेक सुमति भये कहां लौं बखानिए ।

ब्रज भाषा हेत ब्रज भाषा ही न अनुमान,

ऐसे ऐसे कविन की बानी ते जानिए ॥

साहित्यिक भाषा के रूप में ब्रज-भाषा का प्रचार गुजरात से लेकर बिहार तक तथा कूर्माचल से लेकर सुदूर दक्षिण तक था। गढ़वाल-नरेश फतेशाह के राजत्व-काल में तो कितने ही कवि अपनी सुललित रचनाओं द्वारा ब्रज-भारती के भण्डार को भर रहे थे। रत्न कवि उन्हीं के आश्रित थे। महाराजा प्रद्युम्नशाह के आश्रित मोलाराम अपने समय के प्रसिद्ध चित्रकार होने के साथ ही ब्रज-भाषा के भी कुशल कवि थे। पञ्जाब के गुरु गोविन्दसिंह की मातृ-भाषा थी तो पञ्जाबी पर वे कविता रचते थे ब्रज-भाषा में। गोविन्द गिल्ल भाई गुजराती होते हुए भी ब्रजभाषा में ही रचना करते थे।

इस प्रकार ब्रज-भाषा-भाषी न होने के कारण यह सब कवि अपनी भाषा को प्रान्तीय प्रभाव से मुक्त न कर सके। औरों की तो बात जाने दीजिये सूर, तुलसी, बिहारी जैसे महाकवियों की भाषा भी शुद्ध ब्रज-भाषा नहीं कहाई जा सकती। यहाँ इसके कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे। सब से पहले बिहारी ही को लीजिये। बिहारी ब्रज-भाषा के महाकवियों में से हैं। उनकी भाषा विशुद्ध ब्रज-भाषा कही जाती है। पर वे भी अपनी भाषा को प्रान्तीयता के दोष से न बचा सके। यहाँ इसका एक उदाहरण पर्याप्त होगा। देखिये—

मोर चन्द्रिका श्याम सिर चढि करति गुमानु ।

लखिबी पाइन पर लुटति, सुनियतु राधा-भानु ॥

उपर्युक्त दोहे में लखिबी शब्द बुन्देलखण्डी है। इसी-प्रकार तुलसीदास भी राजापुर के होने के कारण अपने राम चरित-मानस में विशुद्ध अवधी नहीं लिख सके। इस सम्बन्ध में उनकी दो पंक्तियाँ देखिये: -

‘परिवार-पुरजन मोहि राजपि प्राण प्रिय सिय जानवी ।

तुलसी सुशील सनेह लखि निज किंकरी करि मानवी ॥

दास जी अपने समय के बहुत बड़े भाषा शास्त्री थे। उनकी भाषा विशुद्ध ब्रज भाषा बतायी जाती है परन्तु याद ध्यान पूर्वक देखा जाय ता उसमें भी यही कामयाबी मिलेगी। नीचे दास जी की भाषा का भी एक नमूना लोजिये। देखिये बुन्दल-खण्डी शब्दों का प्रयोग वे किस प्रकार दिल खालकर करते हैं:—

‘जाती है तु गोकुल गोपाल हूँ पै जंबी नेकु,

आपनी जो चोरी मोहि जानतो तू सही है,

पाय परि आपही सौं पूछबी कुशल छेम,

मोपै निज ओरतें न जात कछु कही है ।

दास मधु मासहु के आगम न आये तबें,

तिनसों सन्देसनि की बातै कहा रही है,

एतो सखि कीबी यह अंव-वौर दीबी अरु

कहिबी वा अमरैया राम राम कही है ।’

प्रसिद्ध कवियित्री ‘तज’ की भाषा पर पंजाबी का प्रभाव कितना स्पष्ट है, देखिये:—

नन्द के कुमार कुरबान ताण्ड सूरत पै,

ताण्ड नाल प्यारे हिन्दुवानी ह्वै रहूंगी मैं ।

यदि सच कहना अपराध न समझा जाय तो मैं कहूँगा कि रसखान और घनआनन्द को छोड़कर शेष कवियों में बहुत कम ऐसे हुए हैं जिनकी भाषा शुद्ध ब्रज कही जा सकती है। फिर रत्नाकर जी इसके अपवाद कैसे हो सकते थे। वे काशी के निवासी थे। उनकी भाषा पर बनारसीपन की छाप का होना आवश्यक ही था। उनकी रचनाओं में ऐसे शब्द अधिक मात्रा में आये हैं जिनकी दुनिया काशी तक ही सीमित है; पर कवि ने इन्हें ब्रज भाषा के सांचे में इस प्रकार ढाल दिया है कि वे स्पष्ट लक्षित नहीं होते। भगवान् भूतनाथ की पुरी में भंगभवानी का सेवन कोई नयी बात नहीं। बाबा विश्वनाथ के पुजारियों का यह तो दैनिक कृत्य ठहरा। साफ़ी भंग छानने के वस्त्र के अर्थ में वहाँ प्रयुक्त होता है। देखिये इस साफ़ी शब्द का कवि ने कितनी सुन्दरता के साथ प्रयोग किया है:—

तूँबा तोरी, साफ़ी* छोरि मुख विजया सों मोरि,

जैसे कंज गन्ध पै मलिन्द मंजु धावै हैं ।

इसीप्रकार गोरू शब्द विश्वनाथ पुरी में गाय बैल के अर्थ में प्रचलित है, अब इसका प्रयोग देखिये:—

कोउ गोरन जल प्याइ न्हाइ परखति पन घट पर,

कोउ गागरि भरि सोस चलति धरि कोउ तट पर ।

❀ काशा मे यह शब्द उस कपड़ के लिए भी प्रयुक्त होता है, जिसका उपयोग गंजेड़ी लोग गाँजा पीते समय करते हैं ।

काशी में भकुआ मूग के अर्थ में प्रयुक्त होता है । रत्नाकर जी ने इसका प्रयोग, इसी अर्थ में किया है । देखिये:—

सूखे से खमों से सकबके से सके से थकि,
भूले से अमे से भभरे से भकुवाने से ।

काशी में 'भमेला' भगड़े या बखेड़े के रूप में प्रयुक्त होता है । रत्नाकर जी ने इस शब्द का प्रयोग इस प्रकार किया है:—

“कहै रतनाकर त्यों आप अब तापै आई
सांसनि कि सांसति दे भारत भमेला है ।”

‘खपाना’ विश्वनाथ पुरी में मार डालने के अर्थ में प्रयुक्त होता है । कविवर रत्नाकर ने इस शब्द का प्रयोग इस प्रकार किया है:—

“ज्योंहि चह्यो चसक चखायो ताहि कअर सौं,
पअर में त्योंहि पेसि खअर खपायो है ।”

उदवासना शब्द का प्रयोग काशी में उच्चाटन करना, भगाना, नष्ट करना आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है । जैसे—

“नन्द के कुमार सुकुमार को बसाइ यामें,
उधौ अब हाई के बिसास उदबासैं हम ।”

काशी में ‘अंगेजना’ शब्द का प्रयोग शरीर पर भेलने के अर्थ में किया जाता है । जैसे—

औ अबोध बालक हू कौं बिलखत सङ्ग भेज्यौ,
एक मरिबो को छांड़ि कहा नाहिं जो अंगेजों ॥

कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनका उच्चारण तो है एक ही, पर पूर्व तथा पश्चिम में उनका प्रयोग भिन्न भिन्न अर्थों में होता है।

रत्नाकर ने दोनों ही अर्थों में इन शब्दों का उपयोग किया है। देखिये—

गारना { पूर्वी अर्थ— निचोड़ना
पश्चिमी अर्थ—नष्ट करना

प्रयोग:—

पूर्वी अर्थ के अनुसार:—

“कोउ ऊरुनि बिच दाबि बसन गीले गहि गारति ।

उसरत पट कटि उरमि मङ्क जुत बङ्क निहारति ॥”

पश्चिमी अर्थ के अनुसार—

सारी सखी मण्डली मनाई समुझाई थीकीं,

निज निज गुन के गुमान सब गारै है ।

चाँपि { पूर्वी अर्थ— (दबाकर) नष्ट करना
पश्चिमी अर्थ— दबाकर

प्रयोग—

पूर्वी अर्थ के अनुसार:—

चपल चकता की मत्ता अरु सत्ता चाँपि,

चमन्त को नन्दन अमन्द कहवाऊँ मैं ।

पश्चिमी अर्थ के अनुसार:—

काँपि काँपि उठत कोजौ कर चाँपि चाँपि,

उर ब्रजवासिनी कै निठुर ठनी रहै ।

कहीं कहीं कवि को तुक ठीक बैठाने के लिए व्याकरण का भी गला घोटना पड़ा है। उदाहरणार्थ देखिये:—

“फिर यह आनन कहाँ कहाँ यह नयन अभागी।

यौं कहि बिलखि निहारि नृवति-रुख रोषम लागी ॥”

नेत्र शब्द पुलिंग है। अतः नेत्र अभागी कहना व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है; किन्तु तुक बैठाने के लिए कवि को यह सब करना पड़ा। इसप्रकार रत्नाकर जी की भाषा को देखते हुए कम से कम यह तो अवश्य मानना पड़ेगा कि उनके अधिकांश शब्द बनारसी टकसाल में धड़े हुए हैं। गेदे

रत्नाकर की शैली

किसी कवि अथवा लेखक की भाषा पर आलोचनात्मक दृष्टि डालते समय हमें दो बातों का ध्यान रखना पड़ता है। एक विचार और दूसरे विचार प्रकाशन की रीति। भाषा का उद्देश्य विचार प्रकाशन ही नहीं है। बल्कि विचारों को सुचारु रूप से दूसरों के सामने रखना भी है। यदि हम दूसरों को अपने विचारों से प्रभावित कर सकें तो समझना चाहिए कि हम अपने इस उद्देश्य में सफल हुए। भाषा द्वारा विचार प्रकाशन तो सब करते ही हैं, पर उन विचारों को सुचारु रूप से दूसरों के सामने रखना हरएक को नहीं आता। साहित्य शास्त्रियों ने विचार प्रकाशन की इस रीति को शैली कहा है। कभी कभी लोगों को ऐसा कहते हुए सुना गया है, कि “अमुक व्यक्ति जब बात करता है तो उसके मुँह से फूल झड़ते हैं।” “उसका क्या कहना, उस कलम में तो जादू है। जब लिखता है तो

कागज पर हृदय निकाल कर रख देता है।” आखीर में सब है क्या ? किन गुणों के कारण एक वक्ता अथवा लेखक की इतनी प्रशंसा की गयी ।

एक वक्ता जब व्याख्यान देने के लिए खड़ा होता है तो लोग उठने लगते हैं, बहुत से भगवान से मनाते हैं कि शीघ्र ही यदि यह अपनी बकवास बन्द करदे तो अच्छा हो । एक ही विषय पर एक ही समान योग्यता के दो लेखक कुछ लिखते हैं, एक की रचना हाथों हाथ बिक जाती है और दूसरे की रचना आलमारियों में बन्द पड़ी २ दीमकों का भोजन बन जाती है । यह सब शैली का ही तो खेल है । इस दृष्टिकोण को सामने रख कर जब हम किसी लेखक अथवा कवि की रचनाशैली की समीक्षा करने बैठते हैं तब हमारे सामने यह प्रश्न उपस्थित होता है कि अमुक लेखक अथवा कवि विचारों को सुचारु रूप से व्यक्त करने में कहां तक सफल हुआ । उसकी शैली में दूसरों को प्रभावित करने की शक्ति है अथवा नहीं । उसके शब्दों में अर्थबोध कराने के साथ साथ दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करने की शक्ति है भी या नहीं ।

किसी रचना को इस दृष्टि से परखना ही काव्यकला की सच्ची कसौटी है । इस दृष्टि से जब हम रत्नाकर जी की काव्यकला पर विचार करते हैं तो हम उनकी शैली में उनके व्यक्तित्व की प्रधानता पाते हैं । उनकी शैली की विशेषता यह है कि उनकी रचनाओं को देखते ही पाठक बिना सोचे समझे कह उठता है “यह रचना रत्नाकर जी की ही है । दूसरा तो ऐसी रचना कर ही नहीं सकता । साहित्य मिमांसकों का मत

है कि उच्चकोटि की रचना शैली वही है जिसमें लेखक के अपने व्यक्तित्व की छाप लगी हो। इस दृष्टि से हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि रत्नाकर जी की शैली अपनी है। उसमें किसी दूसरे के व्यक्तित्व का आभास नहीं होता। कभी ऐसा भी होता है कि किसी का कण्ठ स्वर किसी दूसरे से मिल जाता है। फिर भी उसमें प्रत्येक की वाणी में अपने व्यक्तित्व की छाप लगी होती है। जो पारखी हैं उनके लिए यह बता देना कठिन नहीं होता कि इस स्वर में किसका संगीत है। भले ही रत्नाकर का स्वर पद्माकर से मिल जाय, पर रत्नाकर ने वीणापाणि की वीणा पर जो तान छोड़ी है, वह अपनी है। पद्माकर तो केवल वर्ण मैत्री की ओर ध्यान देते थे, रत्नाकर ने वर्ण मैत्री की ओर ध्यान देने के साथ २ ऐसे शब्दरत्नों के चयन की ओर भी ध्यान दिया है जो अर्थबोध के साथ साथ उसमें सौन्दर्य भी उत्पन्न करें।

किसी बात को सीधे साधे शब्दों में यों ही कह डालना कोई विशेषता नहीं रखता। कहने की विशेषता तब है जब बात इस ढंग से कही जाय कि सुनने वाला उसके सीधे-सादे अर्थ को ग्रहण न करके किसी दूसरे ही अर्थ को ग्रहण करे। सर्वसाधारण की बातों में यह बात कहां। किसी सुवक्ता, सुलेखक अथवा सुकवि की वाणी में ही यह विशेषता मिल सकती है। वीणापाणि के सच्चे सार्थक रत्नाकर में हमें यह विशेषता सर्वत्र मिलती है। उनकी प्रत्येक पंक्ति में हमें एक प्रकार की लाक्षणिकता मिलती है। अपनी इसी विशेषता के कारण ही कोई कवि महाकवि कहलाने का अधिकारी होता है। मैं ही ऐसा नहीं कहता, प्राचीन साहित्याचार्य भी तो यही कहते हैं;—

“प्रतीयमानं पुनरन्य देव

वस्त्वस्ति वाणीषु महाकविनाम् ।

यत्स्पृसिद्धावय वातिरिक्तं

विभाति लावायामिवाङ्गनासु ॥”

(ध्वन्यालोक-५४)

अर्थात् महाकवियों की वाणी में अभिधीयमान वाच्य अर्थ से अतिरिक्त, “प्रतीयमान” अर्थ एक ऐसी चमत्कारक वस्तु है—जो कुछ इस प्रकार चमकती है, जिस प्रकार अंगना के अंग में हस्तपादादि प्रसिद्ध अवयवों के अतिरिक्त लावण्य ।

अपनी इसी विशेषता के कारण रत्नाकर महाकवि कहलाने के अधिकारी हैं । [महाकवि रत्नाकर के शब्द चयन की विशेषता यह है कि वे जिस अर्थ का बोध कराने के लिए जिस शब्दरत्न को चुनते हैं वही उस स्थान के लिए उपयुक्त होता है । इसी अर्थ को देने वाले उसके दूसरे पर्यायवाची शब्द से बदल देने पर वह बात न रहेगी । इसके कुछ उदाहरण देखिये, हरिश्चन्द्र काव्य में :—

पुनि पुच्छयौ सुरराजः—

आज मुनि आवत कितते

लोकोत्तर आस्थाद परत छलक्यौ जो चित ते ।

सुरराज के इस प्रश्न पर देवर्षि को कहना पड़ाः—

अहो सहस दग साधु बात सांचि न मानि ।

उपर्युक्त पंक्तियों में इन्द्र के लिए एक स्थान पर सुरराज तथा दूसरे स्थान पर सहस्रदग शब्द का प्रयोग कवि ने किया है । प्रथम पंक्ति में सुरराज इन्द्र के मान तथा प्रतिष्ठा का सूचक तो है ही

साथ ही इस बात का द्योतक भी है कि सुरराज होनेके कारण ही इन्द्र दूसरों के मानप्रतिष्ठा को बढ़ते हुए नहीं देखना चाहते। आखिर सुरराज ठहरे, दूसरा उनसे कोई बढ़ कैसे जाय।

इसी प्रकार नारद ने इन्द्र के लिए सहस्रदृग का प्रयोग किया। सहस्रदृग के पीछे जहां एक पौराणिक गाथा छिपी है, वहां इसी सहस्रदृग से किसी बात को गहराई से देखने वाले एक अनुभवी व्यक्ति की भी व्यंजना होती है। वास्तव में ऐसा ही व्यक्ति किसी को देखकर कह सकता है “आज तो बड़ी प्रसन्न मुद्रा में दिखाई दे रहे हैं आप ! कहिए, कहां से शुभागमन हुआ है।” “लोकोत्तर आल्हाद छलक्यो जो चित्त तै”, कहने वाले इन्द्र के लिए सहस्रदृग कितना उपयुक्त है। किसी के हृदय की गहराई तक उतर जाने वाली एक सफल राजनीतिज्ञ की आंखों की कितनी सुन्दर व्यंजना है, इस सहस्रदृग में। इसे तो कोई विवेकी विवेचक ही समझ सकता है। इसी प्रकार “आल्हाद का छलकना” भी हृदय के छिपे हुए रहस्य को प्रकट कर डालने की सुन्दर व्यंजना कराता है।।

कवि ने वाच्यार्थ को प्रधानता न देकर व्यंग्यार्थ को ही प्रधानता दी है। गङ्गावतरण काव्य में ‘इन्द्र द्वारा’ अश्वमेघ यज्ञ का घोड़ा चुराए जाने पर जब दैवज्ञों ने गणना करके सगर को बतलाया :—

“है मिलिबौ श्रमसाध्य दैव पर आत्त मिलै है,
है सुभपरिणाम, आदि असुभ लखै है।”

गणकों के यह शब्द सुनने पर सगर की जो दशा हुई उसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है :—

“मख राखन कौ रंग पार नरपति हरिआने,
मानो सूखत सालि खेत पर घन घहराने।”

यहां ‘हरिआने’ शब्द कितना चमत्कारक शब्द है। उससे यहां प्रसन्न होना, यह लाक्षणिक अर्थ तो निकलता ही है, साथ ही रंग शब्द भी अपना रंग दिखा देता है; यह रंग शब्द एक और ढंग का अर्थ देता है और दूसरी ओर हरियाने के वाच्यार्थ हरे होने में सहायक होता है। इसी प्रकार “मानो सूखत सालि खेत पर घन घहराने” वाली उत्प्रेक्षा भी नरपति हरियाने के रंग को चटकीलापन दे देती है।

ऐसा ही एक और उदाहरण देखिये :—आंखे चार होना, एक मुहाविरा है, जिसका अर्थ है किसी का मिलना। इसी मुहाविरा का कवि ने कितनी सुन्दरता के साथ प्रयोग किया, है जरा देखिये तो सही :—

“औचक अकेले मिले कुंज रस पुंज दो दोऊ,
भौचक भए औ सुधि-बुद्धि सब खवै गईं।
कहै रतनाकर त्यों बानक विचित्र बन्यौ,
चित्र की सी पलकैं सुभौहूँनी मैं पवै गईं ॥
नैननिं मैं नैनकि के बिम्ब प्रति बिम्बनि सौं,
दोहु और नैननि की पांति बँधि द्वै गईं।
दोउनि कौं दोउनि के रूप लखिबे कौं मनौ,
चार आंख होते ही हजार आंख ह्वै गईं ॥

यहां चार आंख होते ही हजार आंख ह्वै गईं में जो लाक्षणिकता है उसके वास्तविक सौन्दर्य को कोई काव्य मर्मज्ञ ही समझ सकता है; दूसरे के सामने तो उसकी व्याख्या करना

भी भैंस के आगे बीन बजाना होगा। आखें तो चार होती ही हैं लेकिन चार आंखें होते ही हज़ार आंखे होजाना कुछ और बात रखता है। जब वे सामने आते हैं तो शरीर का रोम रोम मुस्कुराने लगता है, मेरी आँखे ही हज़ार आँखे बनकर उनके सौन्दर्य सुख का पान करने लगती है। कितनी सुन्दर व्यंजना है ! रत्नाकर ने कहीं २ वाच्यार्थ में अपूर्वता ला दी है। पाठक स्वयम् वाच्यार्थ द्वारा दूर की कौड़ी ले आता है, देखिये।

प्रेममद छाके पग परत कहां के कहां,
थाके अंग नैननि शिथिलता सुहाई हं ।
कहै रत्नाकर यौ आवत चकात ऊधौ,
मानौ सुधियात कोई भावना भुलाई है ॥

“प्रेम मद छाके” उद्धव की दशा का वर्णन कितना सुन्दर है। प्रेममद छाकै होने के कारण ही तो उद्धव के पग कहीं के कहीं पड़ रहे हैं और इस प्रकार बेहोशी के आलम में वे चले जा रहे हैं; जैसे कोई भूली हुई बात सोच रहे हों। कवि अपने शब्दों से तस्वीर सी खींच देता है। पड़ते ही आंखों के सामने एक चित्र चित्रपट के चलचित्रों के समान नाचने लगता है। मुहावरों में व्यंगार्थ अथवा लक्ष्यार्थ की ही प्रधानता रहती है। वाच्यार्थ तो उनमें लिया ही नहीं जाता। ऐसा करने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है, जैसे—यदि कहें “ऋषि तो प्रेम के नाक का बाल है” यदि इस वाक्य को सुनकर कोई मक्खी पर मक्खी मारने वाला टीकाकार वास्तव में ऋषि जी को प्रेम के नाक का बाल ही मान बैठे तो सब गुड़ गोबर नहीं हो जायेगा ? लक्षणा बेचारी पनाह

मांगने लगोगी। पर रत्नाकर जी के यहां यह बात नहीं। वहां तो एक ही वाक्य में वाच्यार्थ-लक्ष्यार्थ दोनों ही अपना चमत्कार दिखाते हैं। विवेकी विवेचक के लिये यह जानना कठिन हो जाता है कि वह इनमें किसे प्रधान माने किसे गौण। इसका भी एक उदाहरण देखिये:—

“सासु के नेकुं न आस गुनै न सुनै कछु सीख जो देति जिठानी ।
 त्यों “रत्नाकर” आन धरै न तौ कान करै सखियानि की बानी ॥
 देखत ही को सुघात मैं ढोलति बोलती बात सब बिततानी ।
 रोवत रोवत ही अब तौ गिरि वाकी गयौ अखियानि कौ पानी ॥”

आंख का पानी गिर जाना यह मुहाविरा लाज शर्म बेच खाने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। परन्तु यहाँ रोते रोते आंखों का पानी खो देना इस अर्थ की भी प्रतीति कराता है कि रोते रोते नायिका अपने आंसुओं को खो चुकी। अब उसके पास आंसु भी न रहे। पहले अर्थ में अभिधा और दूसरे अर्थ में लक्षणा के द्वारा पाठक कवि के मर्म तक पहुंचने में सफल होता है।

मुहाविरों का बहुत सुन्दर तथा लाक्षणिक प्रयोग कवि ने दिल खोल कर किया है तो कहीं कहीं ऐसे शब्दों का प्रयोग भी कवि ने किया है जो किसी वाक्य के साथ मिलकर उसमें एक प्रकार की लाक्षणिकता उत्पन्न कर देते हैं। जैसे:—

“हय चुराइ पाताल पैठि बैद्यौ बक-ध्यानी ।

सगर-सुतनि की पै महान महिमा नहीं जानी ॥”

सगर पुत्रों का क्रोध के आवेश में तपस्या करते हुये मुनि को बक-ध्यानी अथवा बगुला भगत कहना वाक्य में एक प्रकार का अर्थ-सौन्दर्य उत्पन्न कर देता है।

प्रायः हिन्दी कवियों ने मुहाविरों के प्रयोग में उनके साथ खूब मनमानी की है। उनके प्रचलित रूप को बिल्कुल बदल डाला है। इसी सनक में डाक्टर मैथिलीशरण ने अंगुली पकड़ कर पाहुँचा पकड़ने के मुहाविरे को उँगुली पकड़ कर प्रकोष्ठ पकड़ना लिख मारा है। हरिऔध जी ने भी कहीं कहीं मुहाविरों के साथ मनमानी की है। किया तो रत्नाकर जी ने भी कहीं कहीं ऐसा ही, पर बहुत कम। वह भी वर्णिक छन्दों में विशेष रूप से सवैये में। जैसे—

“बरजौ बृथा ढारिबे सौं असुवा, हमैं जीवन सौं कर धोइबो है।”

लोक-प्रसिद्ध मुहाविरा है ‘हाथ धोना’। इसे ‘कर धोइबो है’ कर डालना ऐसा ही है जैसे आँखें चार होते ही वह मुझे आँखों में बिठा लेते हैं को चक्षु चार होते ही वे मुझे चक्षुओं में बिठा लेते हैं कर डालना। गनीमत है रत्नाकर ने ऐसा सब जगह नहीं किया। छन्द के नियम में बँधे होने के कारण मजबूरन उन्हें ऐसा करना पड़ा। मात्रिक छन्दों में उन्होंने कहीं भी ऐसा नहीं किया है। कवित्त में जिसमें अक्षरों के गुरु लघु का विचार नहीं करना पड़ता रत्नाकर जी ने ऐसी भद्दी भूल नहीं की। उर्दू के कुशल कवि तथा फारसी के विद्वान होने के कारण रत्नाकर जी जानते थे कि मुहाविरों के रूप में उलट-फेर कर देने से कभी-कभी अर्थ का अनर्थ भी हो जाता है। ऐसा कर देने से मुहाविरा अपनी लाक्षणिकता खो बैठता है। साथ ही उसमें अर्थ-बोध कराने की शक्ति भी नहीं रहती। उन्होंने इसीलिए मुहाविरों के लोक-प्रचलित रूप ही अधिक रखे हैं। हिन्दी में रसखान, घन-आनन्द तथा ठाकुर को छोड़

कर शेष सभी कवियों ने मुहाविरों के साथ मनमानी की है। हिन्दी में सब से अधिक मुहाविरों का प्रयोग रत्नाकर जी ने ही किया है। उनकी एक-एक पंक्ति में कभी दो-दो और कभी तीन-तीन मुहाविरे भी प्रयुक्त हुए हैं। जैसे—

“सोच्यौ जो यह बयस, बृथा एम ही चली जै है,
तौ स्तरत दिन माहिं कठिन तप पार न पै है।

कुछ मुहाविरे ऐसे भी हैं जिनका प्रयोग एक स्थान में एक अर्थ में होता है और दूसरे स्थान पर किसी दूसरे अर्थ में। “आँख फेरना” इस मुहाविरे का प्रयोग ध्यान न देने अथवा भुला देने के अर्थ में होता है। पर विश्वनाथपुरी में इसका प्रयोग सर्वथा विपरीत होता है। वहाँ इसका प्रयोग होता है ध्यान देने के अर्थ में। कवि ने इसका प्रयोग दोनों ही अर्थों में किया है। देखिये—

आँख फेरना (ध्यान देने के अर्थ में)

“भीषम कौ प्रेरौ कर्ण हूँ कौ मुख हेरौ हाय,

सकल सभा को ओर दीन दग फेरौ मैं ।”

आँख फेरना (ध्यान न देने के अर्थ में)

“कहति पुकारि पुकारि बस मैया मुख हेरौ,

वीर पुत्र हूँ ऐसे कुसमय आँखि न फेरौ ।”

कहीं कहीं लोकोक्तियों का प्रयोग प्रसङ्गानुकूल बिल्कुल ठीक बैठा है, जैसे—

“हाय तात यह भयौ घात बिन बात तिहारौ ।

होम करत कर जर्ग्यो हर्यौ बिधि बाम हमारौ ॥”

‘होम करते ही हाथ जलना’ इस लोकोक्ति का प्रयोग कवि ने बहुत सुन्दर ढङ्ग से किया है। सगर अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे। अश्वमेध का अश्व इन्द्र द्वारा चुराये जाने पर सगर सुतों को कपित्थ के कोपानल में जल कर भस्म होना पड़ा। सगर के पौत्र अंशुमाल ने जब सगर पुत्रों की भस्म को देखा तब उसके मुख से “होम करत कर जर्यौ” कहलाना प्रसङ्गानुकूल है, इसे पाठक स्वयं सोच सकते हैं। इस प्रकार के प्रयोग से लोकोक्ति, लोकोक्ति न रह कर कथा प्रसङ्ग का अङ्ग बन गई है। “पर्यौ विधि वाम” के मुहाविरे ने तो उपर्युक्त लोकोक्ति के साथ मिल कर इसके सौन्दर्य में चार चाँद लगा दिये हैं।

‘अन्धे के आगे रोना अपने नयन खोना’ इस लोकोक्ति का प्रयोग उस समय होता है जब कोई किसी सगे दिल को अपना दर्देदिल सुना कर मोम बनाने का असफल प्रयत्न करता है। इस लोकोक्ति का प्रयोग रत्नाकर उस समय करते हैं जब द्रौपदी अपना करुण-क्रन्दन सुना कर अन्धे धृतराष्ट्र को दया-द्रवित करना चाहती है। इस लोकोक्ति में जो अन्धे के आगे रोने की बात कही गई है उससे अभिप्राय उस अन्धे से नहीं है जो चर्म-चक्षुओं से रहित है, प्रत्युत उस अन्धे से है जिसके पास हृदय के नेत्रों का अभाव है। परन्तु जन्मान्ध धृतराष्ट्र की, बाहर की तो फूटी ही थी साथ ही भीतर की आँखें भी नहीं थीं। ऐसी दशा में देवी द्रौपदी का यह कथन—

“भीषम कौ प्रेरौं कर्न कौ मुख हेरौं हाय,
सकल सभा की ओर दीन दग फेरौं मैं।
कहे रतनाकर त्यों अन्ध हूँ के आगै रोई,
खोइ दीटि चाहति ननीठहिं निबेरौ मैं ॥”

लोकोक्ति कितनी फिट बैठी है ! इसे जरा हृदय के नेत्रों से देखिये । हो सकता है कि कोई अन्धा किसी के करुण-क्रन्दन को सुन कर पिघल जाय, लेकिन नामुमकिन है कि कोई हृदय का अन्धा किसी के दर्देदिल को सुन कर ऊफ भी कर सके । फिर धृतराष्ट्र का तो कहना ही क्या ! वहाँ तो दोनों ही तरफ का मैदान साफ था । पुत्र-मोह ने दिल की आँखों पर भी पर्दा डाल दिया था ।

कहीं कहीं कवि ने ऐसे शब्दों का प्रयोग भी किया है जो रूढ़ हो गये हैं । 'निबटना' का प्रयोग खानादि से पूर्व शौच आदि से निबटने के अर्थ में होता है । रत्नाकर जी ने भी इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया है । जैसे—

“कोउ निबटति कटितट समेटि चटपट गुजरौटा,
हँसति धसति जलधार कसति कोउ कलित कड़ौटा ॥”

कटितट, समेटि, चटपट, गुजरौटा यहाँ निबटने के के उपर्युक्त अर्थ में सहायक हो रहा है ।

कहीं कहीं लोकोक्तियों का भी सुन्दर प्रयोग कवि ने किया है । 'चोर का जी आधा होता है', इस लोकोक्ति का बहुत सुन्दर प्रयोग कवि इस प्रकार करता है:—

अश्वमेध का घोड़ा चुराये जाने पर सगर अपने पुत्रों से कहते हैं—

“जाके पूत सपूत होहिं तुम से बलसालो ।
ताकौ हय हरि लेहि हाय कोउ कूर कूचाली ॥
देव दनुज थहरात देखि दल तात तिहारौ ।
कहा बापुरौ चपल चोर आधे जियवारौ ॥

रत्नाकर जी के मुहावरों का प्रयोग अर्थबोध में क्लिष्टता नहीं लाता बल्कि उसे और भी सुगम बना देता है। छन्द के अन्तिम चरण में उन्होंने प्रायः इसी ढंग से प्रयोग किया है। जैसे:—

- १ विधि न बनत कोऊ राम कहा कीजिये ।
- २ जानि परै मम जीवन सौ हठि हाथही धोइबै कि अब ठानी ।
- ३ थामि थमै न बहै असुवा यह रोइबौ है हँसि खेल नहीं है ।
- ४ हरि के हमारे एक लोचन करा देते ।
- ५ चित्र समेत चितेरनि मोल लै आपु चितेरिनी हाथ बिकानी ।
- ६ चार आंख होत ही हजार आंखें हूँ गयी ।
- ७ सारे सुख दाहिने तिहारे बाम हूँ गये ।
- ८ जब मन लग जात काहू निरमोहि सौं ।

कवित्त सवैया, आदि छन्दों की अपनी एक विशेषता है। इनमें सारे छन्द का सौन्दर्य छन्द की अन्तिम पंक्ति पर निर्भर होता है। इसीलिए प्रत्येक अगली पंक्ति पिछली पंक्ति से जोरदार होती है। इस प्रकार अन्तिम पंक्ति पिछली सब पंक्तियों की अपेक्षा सशक्त तथा संप्राण होती है। कविवर रत्नाकर के कवित्त तथा सवैया में भी हम वही बात पाते हैं। पद्य को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये उन्होंने प्रायः पद्य के चरणान्त में विरोधमूलक अलंकारों का ही अधिक प्रयोग किया है। जैसे:—

- १ बारन उबारन हूँ बारन बनौ नहीं
- २ बात की मिठाइ मैं लुनाइ भरि लाये हो
- ३ छेदि छेदि छाती छलनी कै बैन बाननि सौं
तामे पुनि ताइ धीर नीर धरिबौ कहौ ॥

- ४ एते वड़े विस्व मांहि हैरें हैं न पड़े जाहि
ताहि त्रिकुटी मैं नैन मूँदि लखिनौ कहौ ।
- ५ तेरी मधुराइ लगी लोचन लुनाइ ह्वै ।
- ६ सूल लगै लागन गुलाबन कै फूल ह्वै ।
- ७ सूधि तै सहस गुनी टेढ़ी भौवँ मिठी है ।
- ८ उनहाय बिसासिन किन दगा धरि कन्द में भेज्यौ हलाहल है ।
- ९ कपट किये हूँ प्यारे निपट भले लगौ ।
- १० हांसि परी जायगी हमारे गर फाँसी ह्वै ।
- ११ बैठत तौ अधरा पर रावरे, पर हिय बेधत हाय हमारे ।
- १२ धूरि परयौ एरि हँहि नेह दई मारै पर
जाकि लाग पाई आग पानी में लगत है ।

रत्नाकर की भाषा पर अन्य कवियों का प्रभाव—

रत्नाकर की भाषा पर पूर्ववर्ती कवियों का भी पर्याप्त प्रभाव है। बिहारी का प्रभाव तो साफ ही लक्षित होता है। नटसाल, दीरघदाघनिदाघ, सुनकिरवा, आड़, ठाडेगाढ़े कुचन। चिहुँटि, कहलाने इत्यादि। इन शब्दों का प्रयोग रत्नाकर जी ने अधिक मात्रा में किया है। उदाहरणार्थ देखिये:—

- १ सोइ चिन्ता की सदा सुभति नटसाल कइति ना
- २ दीरघदाघनिदाघ माहि पानि को तरसैं
- ३ सुनकिरवा की आड़ ताइतरकि तरपिली
- ४ गाढ़े गाढ़े कुचन चिउँटी माल सजोली
- ५ सुरनरमुनि गंधर्व जच्छ किन्नर कहलाने

तुलसी के रामचरित-मानस से भी रत्नाकर ने शब्दरत्नों का चयन किया है। उदाहरणार्थ देखिये:—

“कंकन किंकिनि नुपूर ध्वनि सुनि

—तुलसी

“किंकिनि कंकन नुपूर की ध्वनि धूम मचावत”

—रत्नाकर

“जब ते राम ब्याहि घर आये

नित नव मंगल मोद बधाये”

—तुलसी

“घर घर नित नव मंजुल मंगल मोद प्रजा के”

—रत्नाकर

कवि ने फारसी, अरबी तथा तुर्की आदि भाषाओं के शब्दों का प्रयोग दिलखोल कर किया है। परन्तु इन शब्दों को ब्रजभाषा के साँचे में ऐसा ढाला है कि ये शब्द उसमें बिलकुल खप गये हैं।

रत्नाकर की अनोखी सूझ

किसी ने ठीक ही कहा है “जहाँ न जाय रवि वहाँ जाय कवि”। कवि की सूझ बड़ी विलक्षण होती है। जिसमें यह अनोखी और चोखी सूझ नहीं उसे कवि कहना व्याजस्तुति ही समझा जायगा। वीणापाणी के सच्चे साधक रत्नाकर की सूझ बूझ विलक्षण है। इस क्षेत्र में वे पूर्ववर्ती कवियों से भी आगे बढ़ जाते हैं। यह अनोखी सूझ उनको शैली की अपनी विशेषता है। ऐसी रचनायें बहुत कम मिलेंगी जिनमें उनकी इस अनोखी सूझबूझ की छाप न हो। यहाँ इसके दो एक उदाहरण पयाप्त होंगे:—

“एते दूरि देसनि सौं सखिनि सदेसनि सौं,
 लखन चहैं जो दसा दुसह हमारी है ।
 कहै रतनाकर पै विषम वियोग बिथा,
 सबद विहीन भावना की भाववारी है ॥
 आनैं उर अन्तर प्रतीत यह तातैं हम ।
 रीति नीति निपट भुजंगनि की न्यारी है ॥
 आखिनि तैं एक तौ सुभाव सुनिबै कौ लियौ ।
 काननि तैं एक देखिबे की टेकवारी है ॥

कृष्ण दूर देश रहकर भी केवल सन्देश मात्र से गोपियों की दयनीय दशा का पता चलाना चाहते हैं। इसी पर गोपियों ने चुटकी लेते हुए कहा है, कितनी दूर बस कर केवल सखा के सन्देश द्वारा ही हमारी दयनीय दशा का पता चलाना एक आश्चर्य की बात है। साँप के कान नहीं होते, आँखों से ही वह सुनने का काम लेता है इसीलिये उसे चक्षुश्रवा कहते हैं। लेकिन कृष्ण तो कानों के द्वारा गोपबालाओं की दयनीय दशा को देखना चाहते हैं। सर्प को तो आँखों से सुनने का काम लेने के कारण चक्षुश्रवा कहा गया परन्तु कृष्ण को कानों से देखने का काम लेने के कारण क्या कहा जाय ! देखिये कितनी विलक्षण सूझ है कवि की इन पंक्तियों में।

कहीं कहीं कवि ने विचित्र तथा नई उपमाएँ भी दी हैं। आज तक हिन्दी में किसी कवि ने ऐसी उपमाएँ नहीं दीं। ये उपमाएँ अपने ढङ्ग की हैं। उदाहरणार्थ देखिये। तपस्वी भगीरथ की कृपता का वर्णन करते हुआ कवि कहता है—

“रङ्गौ भूप कौ रूप भावना के लेखा सौ ।

अस्ति नास्ति के बीच गनित कल्पित रेखा सौ ॥”

‘अग्नि नास्ति के बीच गनित कल्पित रेखा सौ’ में कवि ने रेखागणित की रेखा से तपस्वी भगीरथ की तुलना करके सचमुच कमाल कर दिया है। जिन्हें रेखागणित का किञ्चित भी ज्ञान है और जो यह जानते हैं कि रेखा केवल लम्बाई रखती है मुटाई और चौड़ाई नहीं, वे इस उपमा के सौन्दर्य पर मुग्ध हुए बिना न रहेंगे।

कवि अपनी इन विशेषताओं के कारण अपने सभी पिछले कवियों से बहुत आगे बढ़ जाता है साथ ही अगली पीढ़ियों का नेतृत्व भी करता है। पुरानी परिपाटी का अनुयायी होते हुए भी वह नयापन लिए हुए हैं ।

रत्नाकर के शब्द-चित्र

कवि और चित्रकार

कवि भी एक प्रकार का चित्रकार है। बल्कि कुछ बातों में उससे भी बढ़ कर। चित्रकार रङ्ग तथा तूलिका के सहारे चित्र तैयार करता है। उसे चित्र तैयार करने में बड़ी सुविधाएँ हैं। पर कवि को ये सब सुविधाएँ कहाँ? केवल शब्दों की सहायता से उसे चित्र प्रस्तुत करना पड़ता है। चित्रकार केवल मूर्त जगत तक ही सीमित रहता है। वह हमारी अमूर्त भावनाओं को चित्रित करने में कवि के समान सफल नहीं होता। चित्रकार का सम्बन्ध केवल दृश्य जगत तक ही है, कवि की पहुँच है अन्तर्जगत तक। अतः कवि का कार्य चित्रकार की अपेक्षा अत्यन्त कठिन है। केवल शब्दों की सहायता से वह काम कर डालना जिसे चित्रकार रंगों की सहायता से नहीं कर सकता, कम कठिन नहीं है।

कविवर रत्नाकर ने इस प्रकार के बहुत सुन्दर शब्द चित्र तैयार किये हैं। उनके चित्र चलचित्रों के समान एक स्थायी प्रभाव हमारे हृदय पर अंकित कर देते हैं। दीनहीन

सुदामा का चित्र रत्नाकर जी की ललित लेखनी द्वारा कितना सुन्दर बन पड़ा है, जरा देखिए तो सही:—

“जै जै महाराज जदुराज दुजराज एक,
सुहृदय सुदामा राजद्वार आज आये हैं ।
कहै रत्नाकर प्रगट ही दरिद्ररूप
फटही लंगोटी बांधि बाध सौं लगाए हैं ॥
छीनता की छाप दीनता की थाप धारे देह ।
लाठी के सहारें कांठि नीटि ठहराए हैं ।
संकुचित कंध पै अधौटी सी कंधौटी किए,
तापर सछिद्र छोटी लांटी लटकाए हैं ॥”

सुदामा की दीनहीन दशा का जो करुण चित्र द्वारपाल ने भगवान के सामने रखा वह बहुत स्वाभाविक बन पड़ा है । “संकुचित कंध पर अधौटी सी कंधौटी किए, तापै सछिद्र छोटी लोटी लटकाए हैं,” में तो सुदामा की दरिद्रता सजीव होकर हमारे सामने आ जाती है । चित्रकार सुदामा की इस दयनीय दशा का करुण चित्र तो अंकित कर सकता है पर वह उसका करुण वर्णन करके हमारे हृदय की सोयी हुई सहानुभूति को जगा नहीं सकता । इसी प्रकार सुदामा तथा कृष्ण के मिलन का चित्र भी कवि ने बहुत सुन्दरता के साथ प्रस्तुत किया है:—

“आइ पौरि दौरि पेखि दगन अलख दसा,
धोर त्यागि औरइ विसेष दुख-दागे हैं ।
ये तौ करुना सौं छकि छन अगुवाने नाहिं ।
जानि वे पिछाने नाह पलटन लागे हैं ॥”

करुणा वरुणालय के हृदय में करुणा का ज्वार उठने लगा वे अपनी असीम करुणा के कारण इतने द्रवीभूत हो गये कि बरसों से बिछड़े हुए अपने इस मित्र का आलिङ्गन तक न कर सके। दीन हीन सुदामा यह सब देख कर सोचते हैं, कदाचित् भक्त-वत्सल मुझे इन फटे पुराने कपड़ों में देखकर पहचान नहीं पाये। इसी का वर्णन उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने बड़ी सुन्दरता से किया है।

जिन्हें मनोविज्ञान का जरा भी ज्ञान है, वे “जानि वे पिछाने नहि पतटन लागै हैं ” में सुदामा को दीन हीन अवस्था का सहज ही अनुमान कर सकते हैं। भगवान के अतुलनीय वैभव को देख कर सुदामा का अपनी दीनहीन अवस्था पर भी ध्यान गया होगा। एक बार देखा होगा उन्होंने अपने फटे पुराने कपड़ों का, फिर उनका ध्यान गया होगा भगवान के राजसी ठाट बाट पर। ऐसी दशा में सुदामा का पीछे खसकना कितना स्वाभाविक है। उस समय सुदामा के हृदय में जो उथल पुथल मची होगी उसे कोई मनोविज्ञान का ज्ञाता ही समझ सकता है।

कविवर रत्नाकर इस प्रकार के चित्र उतारने में बहुत कुशल थे। उनके चित्र कितने मजीब होते थे इसका अनुमान पाठकगण भगवान शंकर के इस चित्र द्वारा कर सकेंगे, देखिये कितना सुन्दर चित्र है:—

“हेम-वरन सिर जटा चन्द छवि- छटा भाल पर ।

कलित कृपा की कटा-घटा लोचन बिसाल पर ॥

फनि-पति-हार-विहार-भूमि बच्छस्थल राजै ।

जग अबलम्ब प्रलंब भुजनि फरकति छबि छाजै ।

दड़ कटि धाम लवाम चाम सुभ दुरजन दुवन कौ ॥

गूढ़ जानु जो भार भरत सहजहि त्रिभुवन कौ ॥

अरुन कोकनद चरन सरन जो असरन जन के ।

जिनकौ गुन गुंजार करत मन-अलि मुनि गन के ॥

गौर सरीर विभूति भूति त्रिभुवन की सोहै ।

आनन परम उदार-प्रकृति-छबि छलक विमोहै ॥

उमगि कृपा को बारि पगनि डगमग उपजावत ।

तकि तकि ताण्डव नचत दमकि-दम डमरु बजावत”

भगवान शंकर के जिस रूप का चित्रण कवि ने इन पंक्तियों में किया है उससे उनकी भक्तवत्सलता का जो आभास मिलता है, वह रंग और तूलिका की सहायता से बने हुए चित्रकार के कागजी चित्रों में कहाँ ! चित्रकार तो केवल मूर्त जगत तक ही सीमित है। हृदय की कोमलतम भावनाओं का चित्रण करना उसकी सामर्थ्य के बाहर है। गंगा महारानी आकाश से धराधाम पर उतर रहीं हैं, भगवान शंकर गंगागम की प्रतीक्षा में हैं, उस समय का एक चित्र देखिये कितना सुन्दर बन पड़ा है:—

भये संभरि सन्नद्ध भंग कै रंग रंगाए ।

अति दड़ दीरघ सृंग देखि तापर चलि आए ॥

बाधम्बर को कलित कच्छ कटितट सौं नाध्यौ ।

सेसनाग कौ नागबंध तापर कसि बांध्यौ ॥

व्याल-माल सौं भाल बाल चंदहिं दड़ किन्यौ ।

जटा जूट कौ भाल-व्यूह गह्वर करि लिन्यौ ॥

मुंड माल यज्ञोपवीत कटितट अटकाए ।

गाँडि सूल शृंगी डमरु तापर लटकाए ॥

बर वाँहनि करि फेरि चाँपि चटकाइ अंगुरियन ।

बच्छस्थल उमगाइ ग्रीव उचकाइ चाय भिनि ॥

तमकि ताकि भुजदण्ड चंड फरकत चित चोपे ।

महि दबाइ दुहुँ पाय कलुक अन्तर सों रोपे ॥

मनुबल बिक्रम जुगल खंभ जग मन्थन हारे ।

धीर धरा पर अति गंभीर-दढ़ता-जुत धारे ॥

जुगल कंध बल-संध हुमकि हुमसाइ उचकाए ।

दोउ भुजदण्ड उदण्ड तोलि ताने तनकाए ॥

कर जमाए करि हांय नैन नभ ओर लगाए ॥

गंगागम की बाट लगे जोहन हर ठाए ॥

रत्नाकर और मानव प्रकृति

एक सफल कलाकार में निरीक्षण शक्ति का होना अत्यन्त आवश्यक है। भगवान् शंकर के उपर्युक्त चित्र में कवि की निरीक्षण शक्ति दृष्टव्य है। गंगागम के समय शृंगीनाद डमरू आदि की कोई आवश्यकता नहीं थी, इसलिये उन्हें अलग करा दिया गया है। जिस प्रकार एक पहलवान अखाड़े में अपने प्रतिद्वन्दी को ललकार ने के लिये खड़ा हो जाता है, उसी प्रकार भगवान् आशुतोष भी गिरि शृंग पर खड़े खाकर पुण्यतोया गंगा की प्रतीक्षा करने लगे।

रत्नाकर केवल बाह्य चित्रों के अंकित करने में ही सफल नहीं थे प्रत्युत मानव हृदयों के भी सफल चित्रकार थे। एक सफल मनोवैज्ञानिक की तरह उन्होंने मानव हृदय के सुन्दर

चित्र अङ्कित किये हैं। गोपियों से परास्त होकर जब उद्धव मथुरा में पधारते हैं, उस समय का वर्णन कवि ने कितना सुन्दर किया, यह देखने योग्य है। भगवान जब ब्रजवासियों का कुशल समाचार पूछते हैं तब उद्धव जो उत्तर देते हैं उसे उनके हृदय का ही चित्र समझना चाहिये। देखिये, सचमुच “कागज पर रख दिया है कलेजा निकाल कर” उद्धव कहते हैं:—

“आंसुनि की धार औ उभार कौं उसांसनि के,
तार हिचकीनि के तनक टरिलेन देहु ।
कहै रतनाकर फुरन देहु बात रंच,
भावनि के विषम प्रपंच सरिलेन देहु ॥
आतुर ह्वै और हू न कातर बनाओ नाथ,
नैसुक निपारि पीर धीर धरि लेन देहु ।
कहत अबै हैं कहि आवत जहां लौं सबै,
नैकु थिर कइत करेजौ करि लेन देहु ॥”

हृदय की सभी अवस्थाओं तथा दशाओं का वर्णन कवि ने इसी प्रकार सर्वत्र बड़ी सुन्दरता के साथ किया है। ब्रज से लौटने पर जब भगवान उद्धव से मिले तो उनके हृदय की जो दशा हुई उसका भी बहुत तथा मार्मिक वर्णन कविवर रत्नाकर ने अपने उद्धवशतक में किया है। देखिये:—

ब्रज-रज रंजित सरीर सुभ ऊधव कौ,
धाइ बलबीर ह्वै अधीर लपटाणु लेत ।
कहै रतनाकर सु प्रेम-मद माते हेरि,
थरकति बांह थामि थहरि थिराये लेत ॥
कीरति-कुमारि के दरस-रस सद्य ही की,
छलकनि चाहि पलकनि पुलकाणु लेत ।

परन न देत एक बूंद पुहुमि की कौछि,
पौछि-पौछि पट निज नैननि लगाए लेत ॥

उद्धव ब्रज वासियों के दर्शन करके लौटे हैं। उनकी आखें ब्रजाङ्गनाओं के दर्शन से पवित्र हो चुकी हैं, इसलिये भगवान् श्रीकृष्ण उद्धव के प्रेमाश्रुओं की “परन न देत एक बूंद पुहुमि की कौछि, पौछि-पौछि पट निज नैननि लगाए लेत।” हृदय का कितना सुन्दर चित्र है, यह ?

रत्नाकर का प्रकृति चित्रण

रत्नाकर का प्रकृति वर्णन दो रूपों में मिलता है। एक कवियों की बंधी हुई परम्परा के रूप में जिसमें या तो प्रकृति को उद्दीपन के रूप में देखा गया है या अलंकारिक योजना द्वारा उसका चित्रण किया गया। दूसरा वर्णन उस सच्ची अनुभूति के रूप में है जिसका अनुभव कवि स्वयं दूसरों के समान करता है। इसके पृथक् पृथक् उदाहरण देखिये:—

प्रकृति वर्णन, उद्दीपन के रूप में:—

“कोकिल को कूक सुनी हूक हिय माहि उठै
लूक से पलाम लखि अंग भरसान्यौ है ।
करिहौ कहा धौं धीर धरिहौ कहाँ लौ बीर,
पीरद समीर त्यों सरीर सर सान्यों है ॥
पल पल दूजै पल भावन की आस जियौ,
ताइ पर पत्र आई बिप वर सान्यौ है ।
अवधि बदी है कल आवन की कंत अरु,
आज आइ ब्रज में बसन्त वरमान्यौ है ॥

अलंकारिक योजना के ढंग पर:—

“कैधौ अति दुहर दवागि की दपेट कैधौ,
बाढ़व की बिषम भूपेट भर-भार है ।
कहै रतनाकर दहकि दिसदि दासिन सौं,
उगिलत आगि कैधौ पावक पहार है ॥

रुद्र दग तीमरे की कैधौ बिकराल ज्वाला
फँकत पुलिंग कै फनिद फुपुकार है ।
कैधौ ऋतुराज-काज अवनि उसाम लेति,
कैधौ यह ग्रीष्म की भीषम लुआर है ॥*

देखिये उपर्युक्त कविता के सन्देह अलंकार की सहायता से कवि की कल्पना ने कितनी लम्बी उड़ानें मारी हैं। अब प्रकृति का अनुभूतिपूर्ण स्वाभाविक वर्णन देखिये:—

“धाइ धाइ मिथुर मदंध फूले लोधनि सौं,
गंध लुब्ध हूँ कै कंध रगरत गात हैं ।
कहै रतनाकर प्रभात अरुनाई माहिं,
बाघनि के लेखवा लरत लुरियात हैं ॥
उठि उठि धूम बन वासिनि के वासिनि तैं,
त्रासनि तैं सीत के तहांई मंडरात हैं ।
पंछीगन सीस काढ़ि चिटप वमेरनि तैं,
उमाह कलूक मौन गहि रहि जात हैं ॥”

* देखिये बिहारी—

नाहिन ये पावक प्रबल लुएँ चलत चहुँपास ।
मनहु बिरह बसन्त के ग्रीष्म लेत उसांस ॥

प्रकृति का ऐसा सुन्दर स्वाभाविक तथा हृदयहारी वर्णन संस्कृत को छोड़कर अन्यत्र दुर्लभ है। शीताधिक्य के कारण सिकुड़े हुए पक्षियों का अपने अपने नीड़ों के ऊपर को उभक उभक कर देखना और फिर जाड़े के कारण वहीं दुबक कर बैठ जाना कितना स्वाभाविक है।

रत्नाकर जी के प्रकृति वर्णन में रीति कालीन कवियों के समान प्रत्यक्षानुभव की कमी नहीं है। उनके बहुत से प्रकृति चित्र इसीलिए बहुत स्वाभाविक उतरे हैं। अपनी इस विशेषता के कारण तो वे सेनापति तथा पद्माकर दोनों से ही आगे बढ़ जाते हैं।

उपर्युक्त उदाहरणों को पढ़कर विवेकी विवेचक डा० किरणकुमारी गुप्ता के इन शब्दों पर भी विचार करें—

“रत्नाकर की.....अलङ्कार भाराक्रान्त कविता-सुन्दरी की विवशता देखिए,.....इस प्रकार के वर्णनों में अलङ्कारों की इतनी अधिक प्रधानता होती है कि काव्य सौन्दर्य दब जाता है। पाठक का ध्यान प्रकृति के वास्तविक तथ्य पर न जाकर विविध भांति के अलंकारों की ओर ही आकर्षित होता है, इन वर्णनों में चमत्कार प्रदर्शन ही अधिक मिलता है।” कुमारी जी का यह कहना कि रत्नाकर जी की कविता अलंकार-भाराक्रान्त है, है तो ठीक, पर ऐसा सर्वत्र नहीं हुआ है। यदि कुमारी जी रत्नाकर के समस्त काव्य का आलोचनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने का कष्ट उठातीं तो उन्हें कदाचित्त ऐसा कहना पड़ता कि रत्नाकर जी की कविता अलंकार-भाराक्रान्त ही नहीं है उसमें भावगत नयनाभिराम प्रकृति-चित्र भी हैं।

रत्नाकर का काव्य कौशल

अलंकारिक सौन्दर्य

रत्नाकर शब्दों के करामाती कारीगर थे इसीलिए उन्होंने अपनी कविता-कामिनी को विविध अलंकारों से विभूषित किया है। केशव आदि कवियों के समान पाण्डित्य का चाण्डित्य दिखाने के लिये उन्होंने अलंकारों का प्रयोग नहीं किया। उनके अलंकारों ने कविता कामिनी के सौन्दर्य को दूना कर दिया है। अनुप्रास तो उनकी रचना में सर्वत्र ही पाया जाता है। परन्तु इस प्रकार की वर्ण मैत्री द्वारा उनकी रचना में किसी प्रकार की अस्वाभाविकता नहीं आने पायी। ऐसा जान पड़ता है कि मानो कवि की लेखनी से अनायास ही यह शब्द-रत्न निकल पड़े हैं। अनुप्रास का एक उदाहरण देखिये कितना स्वाभाविक है:—

चंचल चपल चलाँक चुलबुलि चेट कहाई ।

चुहुल चोंचले चोज चाव कै चाक चढ़ाई ॥

प्राचीन कवियों का भुकाव रूपक तथा श्लेष की ओर अधिक रहा है। रत्नाकर ने भी रूपक तथा श्लेष के द्वारा अपनी

कविता कामिनी को अधिक मजाया तथा मंजारा है। देखिये श्लेष से पुष्ट रूपक का कितना सुन्दर उदाहरण है:—

“जाकी एक बूंद को विरंचि विबुधेस, सेस,
 सारद महेश ह्वै पर्याहा तरमत हैं।
 कहै रतनाकर रुचिर रुचि ही में,
 जाकि मुनि-मन-मोग मंजु मौद सरसत हैं ॥

इसी प्रकार यह दोहा भी:—

चित चातक जाकों लहत, होत सपूरन काम।
 कृपा-बारि वरमत विमल, जै जै श्री घनस्याम ॥

सांग रूपक का एक उदाहरण देखिये:—

उमड्यौ सोक-समुद्र भई विलुका मखसाला,
 बड़वाग्निनि सो लगन लगी जज्ञाग्निनि-ज्वाला।
 गयौ तुरत फिरि सब उर्द दाह आनन्द पर पानी,
 बढ़ी पीर की लूक धीर-मरजाद न सानी ॥

शोक समुद्र का कितना सुन्दर रूपक कवि ने बाँधा है। यज्ञाग्नि ही इस शोक समुद्र में बड़वाग्नि थी, वेदना की लहरें उठ रही थीं जो धैर्य की सीमा को तोड़ चुकी थीं।

कवि ने पौराणिक कथानकों को लेकर भी सुन्दर रूपक बांधे हैं। सागर-मन्थन की कथा का तुलसी के रामचरितमानस पर आरोप करके कितना सुन्दर साङ्ग रूपक कवि ने बाँधा है। जरा इसे देखिये:—

हृदय कमठ दृढ़ धारि-धर्म-ध्रुव मंजुल सुन्दर।
 अति अनन्त विस्वास-वासुकी-पास सविस्तर।

बहु विधि तर्क-वितर्क-सुरासुर करि सह कारी ।
 आराम-निगम-पुरान-सिंधु मथि सुधा निकारी ।
 सुभ छंद-प्रबन्धनि बांधि बंध अजर अमर तासों भयौ ।
 हमि तुलसीदास ललाम यह राम-चरित-मानस कर्यौ ॥

अब जरा व्यतिरेक का उदाहरण देखिये:—

“सौ तौ करे कलित प्रकास कला सोरह लौ,
 या में बास ललित कलानि चौगुनी को है ।
 कहै रतनाकर सुधाकर कहावै वह,
 याहि लखै लगत सुधा कौ स्वाद फीकौ है ॥
 समता सुधारि औ बिपमता बिचारि नीकै,
 ताहि उरधारि जो विषद ब्रज टीकौ है ।
 चारु चांदनी कौ नीको नायक निहारि कहौ,
 चांदनी कौ नीकौ कै हमारो चाँद नीकौ है ॥”

मुख उपमेय में चन्द्रमा उपमान की अपेक्षा विशेषतायें दिखाकर कवि ने उपर्युक्त कवित्त द्वारा व्यतिरेक का कितना सुन्दर उदाहरण उपस्थित किया, यह बताने की आवश्यकता नहीं । देखिये रत्नाकर जी की ये पंक्तियाँ परम्परित रूपक का कितना सुन्दर उदाहरण हैं:—

“टूक टूक ह्वै है मन मुकुर हमारो हाय ।
 चुकिहूँ कठार-बैन पाहन चलावौ ना ॥”

यदि सन्देह का सुन्दर उदाहरण देखना हो तो रत्नाकर जी की ये पंक्तियाँ पाढ़िये:—

“कैधौ खल-मण्डल उदण्ड चंड दंडन को,
 उद्धत अखंडल कौ अस्त्र दमकत है ।

कहै रतनाकर कै जमन प्रलै कै काज,
अबं क कौ अबं क तृतीय रमकत है ॥

कैधौं दीह दिल्लो-दल-बन-घन जारन कौ,
दपटि दवानल सताप तमकत है ।
चमकत कैधौं सूर-सरजा-दुधारा किधौं,
सहर सितारा कौ सितारा चमकत है ।”

“सहर सितारा कौ सितारा चमकत है” वाली पंक्ति में यमक की छटा तो देखने योग्य है ही ‘साथ ही सितारा चमकता है’ यह मुहावरा कितनी सुन्दरता के साथ यहाँ बैठाया गया है, जरा यह भी तो देखिये ।

भगवान श्रीकृष्ण के नेत्रों का वर्णन करते समय कवि ने उल्लेख अलंकार की झड़ियाँ लगा दी हैं । यह निम्नोक्त कवित्त में देखिये:—

“कोऊ कहै कंज हैं कलानिधि सुधासर के,
कोऊ कहै खंज सुचि-रस के निखारे हैं ।
कहै रतनाकर त्यों साधा करि कोऊ कहैं,
राधा-मुख-चंद के चकोर चटकारे हैं ॥
कोई अंग कानन के कहत कुरंग इन्हें,
कोई कहै मीन ये अनंग-केतु वारे हैं ।
हम तौ न जानै उपकानै एक मानै यहै,
लोभन तिहारे दुःख मोचन हमारे हैं ॥”

निम्नोक्त पंक्तियाँ विकल्प अलंकार का सुन्दर उदाहरण हैं:—

“काल्हि चन्द्रब्यूह पैठिवै के पहिले ही तुम्हें,
हालरन भूमि कौ उताल पहुँचैहौं मैं ।

कै तौ तव विजय जयद्रथ सुनै है जाय,
कै तौ लौ पराजय प्रलाप आप ऐहों में ॥

यदि अन्योक्ति का सुन्दर उदाहरण देखना हो तो
रत्नाकर जी का यह कवित्त देखिये:—

“आयसु पै टेरि बसि-पायस खवैऐ खिन,
निजगुन रूप की हमायस बढ़ावै ना ।
कहै रतनाकर त्यों बावरो वियोगिनि कै,
कंचन मढ़ावै चंचु चाव चित ल्यावै ना ॥
निज तन धारे इन्द्र नंद मतिमन्द जानि,
मानि दग-हानि हियै हौस हुमसावै ना ।
हंस कौ दिखावै ना नृसंस गति गर्व छाक,
ए रे काक कोकिल कौं काकलो सुनावै ना ॥

विद्वानों के सामने डींग हाँकने वाले मूर्खराज के प्रति
कही गई यह अन्योक्ति कितनी सुन्दर बन पड़ी है इसे तो
कोई काव्य शास्त्र का मर्मज्ञ ही समझ सकता है ।

चपलातिशयोक्ति में कारण के ज्ञानमात्र से कार्य हो
जाता है । विहारी को यह अलंकार बहुत प्रिय था । रत्नाकर जी
ने भी इस अलंकार में अपनी ललित लेखनी का चमत्कार
दिखाया है । उदाहरणार्थ देखिये—

“बोधि बुधि विधि के कमण्डल उठावत हौं,
धाक सुरधुनि की धंसी यौं घट घट में ।
कहै रतनाकर सुरासुर ससंक सबै,
बिबस बिलोकत लिखे से चित्रपट में ॥

लोकपाल दौरन दमौं दिसि हहरि लागे,
हरि लागे हेरन, सुपात बरबट मैं ।
त्रयन नदीस लागे, खयन गिरीस लागे,
ईस लागे कयन फनीस कटि-तट मैं ॥

चतुर चतुरानन के कमण्डल उठाने ही मज्जस्त संसार भय से कांप उठा। इसी का अतिशयोक्ति वर्णन उपर्युक्त पंक्तियों में किया गया है।

विभावना अलंकार में कारण के बिना कार्य होता है। इसके भी दो उदाहरण देखिये:—

“विनु घनश्याम धाम धाम ब्रजमण्डल मैं ।

ऊधौ नित बसति बहार बरमा की हैं ॥

× × × ×

कानन में विनु बाजेंहु बैरिनि कानन में नित बाजति ही रहै ।”

उपर्युक्त पंक्तियों में विना घनश्याम के ब्रजमण्डल में वर्षा का होना तथा मनमोहन की सुरली के बिना बाजें ही कानों में निरन्तर बजते रहना, विभावना के सुन्दर उदाहरण हैं। इसी प्रकार कानन कानन में यमक का सौन्दर्य देखने योग्य है।

निम्नोक्त कवित्त असंगति का कितना सुन्दर उदाहरण है। जरा देखिये तो सही:—

“सील सनी सुरुचि सु-वात चलै पूरब की,

आरै आंघ उमगी दानि निदुगने तैं ।

कहै रतनाकर अचानक चमक उठी

उर घन श्याम कै अंधार अकुलाने तैं ॥

आसा वृद्ध दुरदिन दीस्यौ सुरपुर माहिं

ब्रज मैं सुदिन बारि-वृंद हरियाने तैं ।

नीर को प्रवाह कान्ह-नैननि कै तीर वह्यौ
धीर वह्यौ ऊधो उर अचल रसाने तैं ॥”

असंगति अलंकार में कार्य कहीं होता है और कारण कहीं । यहाँ भी तो वही बात है । अश्रुधारा तो प्रवाहित होती है भगवान् कृष्ण के नेत्रों से और धैर्य बहता है बेचारे उद्धव का । इसीप्रकार ये पंक्तियाँ भी असंगति का सुन्दर उदाहरण कही जा सकती हैं ।

“लागत जौ कंटक तिहारे पाय ध्यारे हाय,
आइ पहिलैं सो हिय बेधत हमारे हैं ॥”

विरोध अलंकार रत्नाकर जी को बहुत प्रिय था । इसीलिए स्थान स्थान पर उन्होंने इसका चमत्कार खूब दिखाया है । जैसे:—

मगन न होत सो अपार भवसागर मैं,
तव गरुता की जाहि लगन लगी रहै ॥

कितनी विरोधी बात कही गयी है इन पंक्तियों में । जिसे आप की गुरुता की लगन लगी रहती है वह भवसागर में नहीं डूबता, जबकि यह प्राकृतिक नियम है कि कोई भी भारी वस्तु जल में डूबे बिना नहीं रहती । इसी प्रकार इन पंक्तियों में भी देखिये:—

सीत सौं तिहारे ताप-भीत जम-दूत रहैं ।
आप सौं अनोखी आगि पाप में लगति है ॥

सीत से ताप भीत होना भी कम आश्चर्य की बात नहीं है । इसी प्रकार पानी में आग लगना भी एक चमत्कार ही कहा जायगा । कभी कभी किसी की प्रशंसा में उसकी निन्दा

निहित होती है, इसी प्रकार निन्दा में प्रशंसा। अलंकारिकों ने इसे व्याजस्तुति का नाम दिया है। इसका भी एक उदाहरण देखिये:—

“जाइ रतनाकर पै जम यों दुहाई देत ।

अज आखिल मे मेमनाग ते सुवैया की ।

देखा जागि जमुना कुमाय के हिलोर आप ।

पाप-नाव बोरि मम पुर के गवैया की ॥

विधिहूँ के रोष की न राखै परवाह रंच ।

ऐसी भई मोख पाइ संगति कन्हैया की ।

राखी मरजाद पाप पुन्य की सुसाखी गनै ।

साखी गनै बाप की न भाषी गनै भैया की ॥

“साखी गनै बाप की न भाषी गनै भैया की” आदि निन्दा सूचक शब्दों में यमुना की कितनी प्रशंसा की है, यह यहाँ दर्शनीय है।

परिवृत्ति अलंकार में कुछ देकर कुछ लिया जाता है और कुछ लेकर दिया जाता है। इसका भी एक उदाहरण रत्नाकर जी की इन पंक्तियों में देखिये:—

दे गई हिये में हाय दुमह उदेग-दाग ।

ले गई लड़ैती मन मुरि मुस्काइ कै ॥

‘लड़ैती’ मुस्करा कर मन तो ले ही गई साथ ही साथ वेदना भी दे गयी।

विरोधी के सबल होने पर जहाँ उससे बदला न लेकर उसके किसी सम्बन्धी से बदला लिया जाय वहाँ प्रत्यनीक अलंकार होता है। इसका बहुत सुन्दर उदाहरण रत्नाकर जी के कवित्त में देखिये:—

धारि कै हिमंत के सजीले स्वच्छ अम्बर कों ।

आपने प्रभाव कौ अडम्बर बढ़ाए लेति ।

कहै रतनाकर दिवाकर-उपासी जानि ।

पाला कंज-पुंजनि पै पारि मुरझाए लेति ॥

दिन के प्रताप औ प्रभा की प्रखराई पर ।

निज सियराई रंवराई-छबि छाए लेति ।

तेज-हत-पति मरजात-सम ताकौ मान ।

चाय चढ़ी कामिनी लौं जामिनी दबाए लेति ॥

हेमंत कमल के फूलों को अपने शत्रु दिवाकर का उपासक जानकर जला देता है । सूर्य का मुकाबला करने में अपने को असमर्थ जानकर हेमन्त का ऐसा करना स्वाभाविक ही है । उपर्युक्त पंक्तियों में प्रत्यनीक अलंकार के द्वारा यही बात कितने चमत्कारपूर्ण ढंग से कही गयी है ।

जहाँ किसी वस्तु में उत्तरोत्तर उत्कर्ष अथवा अपकर्ष दिखाया जाय वहाँ सार अलंकार होता है । निम्नोक्त कवित्त इस अलंकार का बहुत सुन्दर उदाहरण है । देखिये:—

“ धीर फेन कैसी फबी अमल अटारी पर,

आई सुकुमारी प्रान-प्यारी नद-नदं की ।

मानो रत्नाकर-तरंग-तुंग-श्रृंग पर,

सुखमा सुहाई लसै कमला सुदंध की ॥

जैसे दीप-दीपति पै दीप मनि-दीपति हैं,

दीपमनि पै ज्यों दुति दामिनि अमदं की

निखिल नङ्गनि पै चंद की प्रभा है जिमि,

चन्द्र की प्रभा पै त्यों प्रभा है मुख-चंद की”

उपर्युक्त कवित्त में दीपक की अपेक्षा मणि दीपक में; मणि दीपक की अपेक्षा दामिनी में, दामिनी की अपेक्षा नक्षत्रों में और नक्षत्रों की अपेक्षा मुखचन्द्र में (उत्कर्ष) दिखाया गया है। अतः यहाँ सार अलंकार है।

अलंकारों के विरोधियों से

अलंकारों का विरोध करते हुए नये युग की नयी रोशनी में पले हुए विद्वान कहते हैं कि अलंकारों का प्रयोग कवि कथन में अस्वाभाविकता ला देता है, उसकी वास्तविकता को नष्ट कर देता है। रस प्रवाह में बाधक होता है। इस प्रकार अलंकारों के विरोधियों की ओर से न जाने ऐसी कितनी युक्तियां दी जाती हैं। * ऐसे लोगों से हमारा निवेदन है कि वे रत्नाकर जी के उपर्युक्त पदों को ध्यानपूर्वक देखें और बतायें कि अलंकारों के प्रयोग से उनकी कविता कामिनी का सौन्दर्य कम हुआ या बढ़ा।

रत्नाकर जी ने अलंकारों का प्रयोग करके अपनी कविता कामिनी के सौन्दर्य को बढ़ा दिया है। उन्होंने अलंकारों का प्रयोग अर्थ में रमणीयता लाने के लिये ही किया था। कोरा चमत्कार दिखाने के लिये नहीं। कहीं कहीं चमत्कारोत्पादन भी रत्नाकर जी का लक्ष्य रहा है। पर ऐसे कवित्त दो चार ही हैं। कोरे चमत्कार ने ऐसे स्थानों पर कवि से उसका हृदय छीन लिया। कोरा बुद्धिपक्ष ही केवल ऐसे स्थानों में प्रधान रहा है। मुद्रालंकार का यह उदाहरण इसके लिये पर्याप्त होगा:—

* देखिये पन्तः—

तुम बहन कर सको जन जन में मेरे विचार,
बाणी मेरी चाहिये तुमको क्या अलंकार।

आवत निहारी हों 'गुपाल' एक बाल जाकी,
 लाग्यों उपमा मैं कवि कांविद् समाज है ।
 तरुन 'दिनेश' दिव्य अरुन अमिल पाय,
 छीन कटि के हरि औ गति गजराज है ॥
 'संभु' कुच मुख 'पदमाकर' दिमाक 'देव',
 तापै 'घनआनन्द' घनेरौ कच-साज है ।
 छबि की तरंग 'रत्नाकर' है अंग मुस-

कानि 'रसखानि' वानि 'आलम' 'निवाज' है ॥

इस प्रकार कवियों के नाम गिनवा कर इस कवित्त में
 कवि ने एक प्रकार की दिमागी कसरत ही की है ।

ऐसी दशा में हम कह सकते हैं कि जहाँ अलंकार का
 प्रयोग कवि अर्थ की रमणीयता के लिये करता है वहाँ कविता
 कामिनी का सौन्दर्य बढ़ जाता है । परन्तु जहाँ वह दिमागी
 कसरत दिखाने लगता है वहाँ कविता कामिनी अपना सौन्दर्य
 खो बैठती है । अतः अलंकारों का बहिष्कार कहाँ तक उचित
 है इसे आप स्वयं ही विचारिये ।

कुछ नये अलंकार

रत्नाकर जी ने कुछ नये अलंकारों का भी प्रयोग किया
 है । अंग्रेजी के प्रसिद्ध अलंकार ऑन्-ऑम्-ऑट्-ओ-पी-ऑ
 (Onomatopoeia) का बहुत सुन्दर प्रयोग किया है । इस
 अलंकार में ध्वन्यात्मक शब्दों का इस प्रकार प्रयोग किया
 जाता है कि सुनने मात्र से वस्तु का वास्तविक रूप सामने आ
 जाय । जैसे:—

(१) “ रचि रचि ताण्डव त्रिपुरारी कहीं डमरु डमकावत”

(२) स्यामा सीरी देत चटक चुटकी चुटकावत

(३) घूम भूम भूम भुकि कल कवोत तबला गुटकावत

(४) हरहरात एक दिस पीपल को पेड़ पुरातन

काव्य में रस प्रवाह

रत्नाकर जी की काव्यनारा में सभी रसों का प्रवाह अबाध गति से हुआ है। उनकी अलंकार प्रियता ने इस रस प्रवाह में किसी प्रकार की बाधा नहीं डाली, सभी रसों के के वर्णन में इसीलिए उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। निम्नोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट सिद्ध हो जायगा कि वे वास्तव में एक रस सिद्ध कवि थे।

१-शृंगार रस

प्राचीन साहित्याचार्यों ने शृंगार को रसरज के नाम से विभूषित किया है। वास्तव में है भी वह रसरज कहलाने का अधिकारी। शृंगार का स्थायीभाव रति अर्थात् प्रेम है। रस मिमांसकों ने इसके दो भेद किये हैं। एक संयोग शृंगार और दूसरा वियोग शृंगार। संयोग शृंगार में नायक नायिका के सम्मिलन का सुन्दर वर्णन होता है। रत्नाकर जी के हिंडोला काव्य में संयोग शृंगार की ही प्रधानता है। देखिये यह कवित्त संयोग शृंगार का कितना सुन्दर उदाहरण है:—

गूँथन गुपाल बैठे बेनी बनिता की आप ।

हरित लतानि कुंज माँहि सुख पाइ के ।

कहै रत्नाकर संवारि निरवारि बार ।

बारबार बिबस बिलोकत बिकार्ई कै ॥

लाइ उरलेत कबौं फेरिगहि घोर लखै,

ऐसे रही ख्यालनि मैं लालन लुभाई कै ।

कान्ह गति जानि कै सुजान मन मोद मानि,

करत कहा हो कह्यौ मुरि मुसुकाई कै ॥

“करत कहा हो” में कितना भोलापन छिपा है, कितनी सरलता तथा स्निग्धता है इन शब्दों में। इसे कोई सद्बुद्ध भावुक ही समझ सकता है।

उद्धवशतक में विप्रलम्भ अथवा वियोग शृंगार के सुन्दरतम उदाहरण यत्रतत्र बिखरे पड़े हैं। विप्रलम्भ शृंगार का वर्णन करने में कविवर रत्नाकर ने अत्युक्तियों में खूब काम लिया है। इस मामले में वे विहारी से पीछे नहीं हैं। देखिये यह कवित्त विप्रलम्भ शृंगार का कितना सुन्दर उदाहरण है:—

हौं तौ हुती मगन ० गन--लौ लगाये हाय ।

लाए उर सुरति सुजान प्रान-प्यारे की ।

कहै रतनाकर पै सबद सुनाइ ढेरि;

फेरि सुधि दीनी छाड़ बिरह बिसारें की ॥

कामिनी कौ ना तौ मानि दामनी दया कै नैकु ।

कसक मिटाई देति मानस हमारे की ।

पारि देती आज वा कपाली के गरे पै गाज ।

जारे देती जोहा वा पपीहा बजमारे की ॥

२ — वीर रस

रस-भीमांसकों ने वीर रस का स्थायी भाव उत्साह मान उसके तीन भेद किये हैं।

(१) दयावीर

(२) दान वीर

(३) युद्धवीर

नीचे युद्धवीर का एक उदाहरण देखिये:—

“ सेनप होहिं सनद्ध सकल-जग-जीतनहारे ।

हम चलि देखैं आप कौन कौँ प्राण न प्यारे ॥

का कौ सिर घर त्यागि धरा पर परन चहत है ।

को जम-गाल कराल भाल निज भरन चहत है ॥

उपर्युक्त पद्य में रौद्र रस वीर रस का सहायक होकर आया है। घोड़ा चुरानेवाला मायावी होने के साथ ही साहसी भी है, यदि साहसी न होता तो ऐसी ढिठाई करता ही क्यों? ऐसे शत्रुका दमन करना हमारे लिये आवश्यक है। इसी लिए सगर उपर्युक्त शब्दों द्वारा सेनापति को उत्साहित करते हुए कहते हैं:—

“ सेनप होहिं सनद्ध सकल-जग जीतन हारे ” ।

३—रौद्र रस

रौद्र रस का स्थाई भाव होता है क्रोध। एक उदाहरण जरा इसका भी देखिये:—

पुनि मुनि करि भू बंक सहित आतंक उचारयो ।

“ रे रवि-कुल कलंक मति रंक हमैँ निरध्यारयो

जा हित मांगत छमा न सो छल छाँड़त नै कँदु ।

अरे मूढ़ मति भई सकल बसुधा जब मेरी ।

काकैँ धन तब अधम देह बिकि है कछु तेरी ॥ ”

विश्वामित्र की क्रोधमयी मूर्ति का कितना सुन्दर चित्रण है। रौद्र रस के अनुभाव ‘पुनि मुनि करि भू बंक सहित आतंक उचारयो’ देखने योग्य हैं।

४—भयानक रस

अब जरा भयानक रस की भयंकरता भी देखिये। गंगा

दृश्य सबके सामने उपस्थित है। उसी का वर्णन रत्नाकर ने इन पंक्तियों में किया है:—

“भरके भानु-तुरंग चर्माक चलि मग सौ सरके ।
हरके बाहन सकत नैकु न बिधि हरिहर के ॥
दिग्गज करि चिक्कार नैन फेरत भय धरके ।
धुनि प्रतिधुनि सौ धमकि धराधर के उर धरके ॥
नभ मण्डल थहरान भानु-रथ थकित भयो छन ।
चन्द चकित रहि गयो सहित सिंगरे तारागन ॥
पौन रह्यौ तजि गौन गह्यौ सब भौन सनासन ।
सोचत सबै सकाई कहा करि है कमलासन ॥

५— करुण रम

भयानक रस की भयंकरता देख चुके। अब तनिक करुण का भी तीव्र प्रवाह देगिये। कपिल की कोपानल में अपने साठ हजार पुत्रों के भस्म हो जाने का हृदय विदारक समाचार सुनकर सगर की जो दशा हुई सो हुई, पर सारी अयोध्या नगरी ही इस हृदय-वेधक समाचार को सुनकर शोक सागर में डूब गयी। देगिये कितना करुण वर्णन है:—

“उमड्यौ सोक समुद्र भई विलुट मल-साला ।
बडवागिनी सी लगन लगी जज्ञागिनी-ज्वाला ॥
गयौ तुरत फिरि सब उछाह आनन्द पर पानी ।
बढ़ी पीर की लहर धीर मरजाद नसानी ॥
लगे सकल सिर धुनन कांड करुना को माच्यौ ।
मनु बनाई बहु वपुष वरुन तिहिं मण्डप नाच्यौ ॥
लागी खान पछाड़ छाड़ मारन सब रानी ।
मानहु माजा मज्जि तलफि सफरी अकुलानी ॥

इसी प्रकार हरिश्चन्द्र काव्य में शैव्या-विलाप का भी बड़ा करुण चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है। मृत रोहिताश्व के शव को गोद में लिये हुए शैव्या करुणक्रन्दन करते हुए कहती है:—

“हाय हमारौ लाल लियौ इमि लूटि विधाता ।
 अब काकौ मुख जोहि मोहि जीवै यह माता ॥
 पति त्यागैं हूँ रहे प्रान तब छोह सहारे ।
 सो तुमहूँ अब हाय बिपति मैं छाँडि सिधारे ॥
 अबहि सांफ लौ तौ तुम रहें बिधि खेलत ।
 औचकहीं मुरझाइ परे मम भुज मुख मेलत ॥
 हाय न बोले बहुरि इताहि उत्तर दीन्हौ ।
 फूल लेत गुरुहेत सांप हमको डसि लीन्हौ ॥
 गयौ कहां सो सांप आनि क्यों मोहूँ डसत ना ।
 अरे प्रान किहि आस रह्यौ अब नमत ना ॥
 कबहु भागबस प्राननाथ जो दरसन दैहैं ।
 तौ तिनकों हम बदा कहौ किहि भांति दिखैहैं ॥

६—वात्मन्य रम

माता पार्वती गणेश को अपनी गोद में लेकर दुलराती हैं, सोचती हैं गजानन अभी बालक ही है, वह विधनों का क्या नाश करेगा। अतः अपने पति महादेव जी से सिफारिश करती हैं कि वे शीघ्र से शीघ्र संसार के विधनों को अपने तीसरे नेत्र की ज्वाला से भस्म कर दें। देखिये, कितनी सुन्दर वात्सल्यमयी भावना है—

“बिघन बिदारन कौं कुमति निवारन कौं,
 टारन को जेतौ जग बिपति-पसारौ है ।

कहै रतनाकर कहति गिरिजा यों नाथ,
हाथ पर्यौ रावरै गजानन ही बारौ है ॥
रैन दिन चैन है न सैन इहि उद्यम में,
दम हू न लेन पावै रंचक विचारौ है ।
जारौ किन कन्त नैन तीसरे दुरत सबै,
एक दन्त ही कौ अबै बालक हमारौ है ॥”

“एकदन्त ही कौ अबै बालक हमारौ है” कितना सुन्दर व्यङ्ग्य है। ‘बालक अभी एक ही दाँत का है’ से यही ध्वनि निकलती है कि अभी तो शिशु के दूध के ही दाँत निकले हैं। वाच्यार्थ, वाच्यार्थ न रह कर यहाँ लक्ष्यार्थ बन जाता है। उपर्युक्त कवित्त में कितनी वात्सल्यमयी भावनाएँ भरी हुई हैं, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं।

७—हास्य रस

रत्नाकर जी की रचनाओं में शिष्ट तथा मिष्ट हास्य के उदाहरण यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। जैसे गङ्गावतरण में तपस्वी भगीरथ ब्रह्मा जी से कहते हैं:—

असन बसन बर बाम धाम भव-बिभव न चाहैं ।
सुरपुर-सुख बिज्ञान मुक्तिहूँ पै न उमहैं ॥
अति उदार करतार जदपि तुम सरबस-दानी ।
हम लघु जाचक चहत एक चिल्लू-भर पानी ॥

विश्व का निर्माण करने वाले ब्रह्मा से चुल्लू भर पानी की याचना करना हास्यास्पद ही है। भगीरथ तो चतुर चतुरानन से सगर पुत्रों का उद्धार करने के लिये पुण्य सलिला गङ्गा की

याचना कर रहे थे। उस गङ्गा की, जिसके अवतरण के समय प्रलयागमन के भय से सारा विश्व थर्रा उठा था। उसी गङ्गा की याचना करते समय 'हम लघु जाचक चाहत एक चुल्लू भर पानी' कहना हास्यास्पद ही कहलायेगा। इस लघु जाचक की लघु याचना को सुन कर चतुर चतुरानन मुस्कराने लगे। कारण क्या था; रत्नाकर जी के शब्दों में ही सुनिये—

“बद्ध-अञ्जलि देखि भूप बिनवत मृदु बानी ।

मुस्काने विधि आनि चित 'चुल्लू भर पानी' ॥”

८—वीभत्स रस

अब वीभत्स रस की भी जरा वीभत्सता देखिये । हरिश्चन्द्र काव्य का श्मशान वर्णन कैसा वीभत्स दृश्य आँखों के सामने ले आता है—

“कहुँ सुलगति कोउ चिता कहूँ कोउ जाति बुझाई ।
 एक लगाई जाति एक की राख बुझाई ॥
 विविध रंग की उठति ज्वाल दुर्गंधनि महकति ।
 कहुँ चरबी सौं चटचटाति सौं कहुँ दह-दह दहकति ॥
 कहुँ फूकन-हित धरयौ मृतक तुरतहि तँह आयौ ।
 परयौ अंग अध जरयौ कहुँ कौऊ कर खायौ ॥
 कहुँ स्वान इक अस्थि खण्ड लै चाटि निचोरत ।
 कहुँ कारी महि काक ठोर सौं ठोकि टटोरत ॥
 कहुँ सृगाल कोइ मृतक अङ्ग पर ताक लगावत ।
 कहुँ कोउ शब पर बैठि गिद्ध चट चोंच चलावत ॥
 जहँ तहँ मज्जा मांस रुधिर लार परत बगारे ।
 जित तित छिटके हाड़ स्वेत कहुँ-कहुँ रतनारे ॥

६—अद्भुत रस

दुर्मति दुर्योधन की आज्ञा से दुष्ट दुशासन पाञ्चाली को नग्न करने के लिये उसका चीर खींच रहा था। परन्तु वह उसे वस्त्ररहित न कर सका। दुशासन वस्त्र खींचते-खींचते थक गया पर उसका अन्त नहीं हो सका। इस अद्भुत दृश्य का अद्भुत वर्णन रत्नाकर जी के ही शब्दों में सुनिये—

“अम्बर लौं अम्बर अनन्त द्रौपदी कौ देखि,
सकल सभा की प्रतिभा यों भई दृढ़ है ।
कोऊ कहै अन्ध-भूप-मोह-अन्ध नासन कौ,
चारु चन्द्रिका की चली चादर अभङ्ग है ।
कोऊ कहै कुरु-कुल-रूप-पाप-खण्डन कौ,
उमड़ति अखिल अखण्ड धार गङ्ग है ।
मेरे जान दोन-दुःख-द्वन्द्व हरिवै कौ यह,
करुना-अपार-रतनाकर-तरङ्ग है ॥”

१०—शान्त रस

अद्भुत रस का अद्भुत प्रवाह देख चुके, अब जरा शान्त रस की स्निग्ध धारा देखिये। संसार की नश्वरता का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

“फूले-फले फिरत कहौ तौ तुम कापै अहो
या की तो महत्ता सत्ता सब कछु जानी है ।
कहै रतनाकर विडम्बना बिचित्र जेती
जीवन के चित्र सौ न अधिक प्रमानी है ॥
हां सौं नहीं होति औ नहीं सौ होति हां है सदा
तातैं हां चहैयनि नहीं सौं रुचि मानी है ।

इहि भवसागर में स्वास आस ही पै बस
पानी के बबूले-सी थिरानी जिन्दगानी है ॥

उद्धव-शतक में उद्धव के कथनों में जहाँ संसार की
नश्वरता के सम्बन्ध में उपदेश दिया गया है वहाँ शान्ति रस के
सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। उदाहरणार्थ देखिये—

पांचौं तत्व मांहिँ एक सत्त्व ही की सत्ता सत्य
या ही तत्वज्ञान की महत्व स्तुति गायौ है ।
तुम तौ बिबेक रत्नाकर कहौ क्यों पुनि
भेद पंच भौतिक के रूप में रचायौ है ।
गोपिनि मैं, आप मैं, वियोग औ संजोग हू मैं
एकै भाव चाहिणु सचोप ठहरायौ है ।
आपु ही सौं आपुकौ मिलाप औ बिछोह कहा
मोह यह मिथ्या सुख-दुख सब ठायौ है ॥

शास्त्रीय कवि

प्राचीन आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा माना है
तथा अलंकारों को काव्य की शोभा बढ़ाने वाले आभूषण ।
यदि उनके द्वारा काव्य की शोभा बढ़ती है तो समझना
चाहिये कि कवि अपने कार्य में सफल हुआ । यदि अलंकारों के
प्रयोग से काव्य की शोभा विकृत हो जाती है तो उनका प्रयोग
ऐसा ही होगा जैसे प्राणहीन शरीर को सुन्दर वस्त्रों तथा
अलंकारों से विभूषित करना । यदि अलंकार अर्थ बोध में
सहायक होते हैं, सहायक ही नहीं होते वरन अर्थ के
सौन्दर्य को और भी बढ़ा देते हैं तब तो समझना
चाहिये कि कवि अपने कार्य में सफल हुआ । इस दृष्टि से जब

हम रत्नाकर जी की कविता को आलोचना की कसौटी पर कसते हैं तो बिल्कुल खरी उतरती है। न तो रत्नाकर ने केशव की तरह अलङ्कारों का दुरुपयोग करके पाण्डित्य का चाण्डित्य ही दिखाया और न आधुनिक कवियों के समान अलङ्कारों का एक-दम बहिष्कार ही कर डाला।

रत्नाकर जी काव्यशास्त्र के पण्डित थे इसीलिए उन्होंने सभी रचनायें शास्त्रीय पद्धति पर की हैं। एक शास्त्रीय कवि (Classical Poet) की रचनाओं की समीक्षा करने के लिए शास्त्रीय ज्ञान की आवश्यकता है। वैसे तो कविवर रत्नाकर की कविता का आनन्द सभी ले सकते हैं फिर भी उसका पूर्ण रसास्वादन करने के लिये काव्य-शास्त्र का मर्मज्ञ होना नितान्त अत्यावश्यक है। जो काव्य शास्त्र का मर्मज्ञ नहीं उसे रत्नाकर जी की रचना सुनाना ऐसा ही होगा जैसा किसी ठुमरी ठप्पा सुननेवाली जनता में किसी संगीताचार्य का भैरवी अलापन। संगीताचार्य जी की कंठ की मधुरता तथा वाणी की सरसता से भले ही लोग मुग्ध हो जाँय, पर उनके राग की उस्तादी को समझकर दाद देना किसी अल्ली-छल्ली का काम नहीं। रत्नाकर जी कवि थे पर सर्वसाधारण के नहीं, वे कवियों के कवि थे।

छन्द निर्वाचन

कविता और काव्य

कविता कवि की वह भावमयी वाणी है जो संगीतमय होकर विशाल विश्व के साथ हमारा सम्बन्ध जोड़ती है। इसी संगीतमयता के कारण कविता में मात्राओं तथा अक्षरों का क्रम निश्चित होता है। इसी निश्चित क्रम को प्राचीन साहित्याचार्यों ने छन्द का नाम दिया है।

काव्य रचना गद्य और पद्य दोनों में हो सकती है किन्तु कविता पद्य में ही हो सकती है। क्योंकि कविता के लिए संगीतमय होना नितान्त आवश्यक है। कविवर रत्नाकर ने अपनी काव्यप्रयी तथा भावमयी सुललित रचनाओं को संगीतमय रूप देने के लिए पद्य अथवा छन्द का ही उपयोग किया है।

आजकल के अल्लो-झल्लो कवि छन्द को कवि की विचारधारा के प्रवाह में बाधक मानते हैं। पर ऐसा वही लोग मानते हैं जो वास्तव में कवि नहीं हैं बल्कि कवि बनने का भ्वांग रचते हैं। आधुनिक युग का नेतृत्व करने लाले कवि शिरोमणी पं० सुमित्रानन्द पंत तक ने भी छन्द के महत्व को स्वीकार किया है इस सम्बन्ध में उनके ये शब्द दृष्टव्य हैं:—

“कविता तथा छन्द के बीच बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है; कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हृत्कम्पन; कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है। जिस प्रकार नदी के तट अपने बन्धन से धारा की गति को सुरक्षित रखते हैं- जिसके बिना वह अपनी ही बन्धन हीनता में अपना प्रवाह खा बैठती है, इसी प्रकार छन्द भी अपने नियंत्रण से राग को स्पन्दन-कम्पन तथा वेग प्रदान कर, निर्जीव शब्दों के रोड़ों में एक कोमल, सजल, कलरव भर, उन्हें सजीव बना देते हैं। वाणी की अनियमित सांसे नियंत्रित हो जाती; तालयुक्त हो जाती; उसके स्वर में प्राणायाम, रोओं में स्फूर्ति आ जाती, राग की असम्बद्ध-भङ्गारें एक वृत्त में बन्ध जाती, उनमें परिपूर्णता आ जाती है। छन्दबद्ध शब्द, चुम्बक के पार्श्ववर्ती लोहपूर्ण की तरह अपने चारों ओर एक आकर्षण क्षेत्र (Magnetic field) तैयार कर लेते, उनमें एक प्रकार का सामञ्जस्य, एकरूप, एक विन्यास आ जाता; उनमें राग की एक विद्युत् धारा बहने लगती, उनके स्पर्श में एक प्रभा तथा शक्ति पैदा हो जाती है”

(पल्लव की भूमिका)

छन्द शास्त्रियों ने प्रस्तार के द्वारा छन्दों के असंख्य भेदोपभेद किये हैं। उनका विस्तृत विवेचन करना हमारा उद्देश्य नहीं है। यहाँ तो हम उन्हीं छन्द रत्नों पर प्रकाश डालेंगे जिनका उपयोग कविवर रत्नाकर ने अपनी रचनाओं में किया है।

विशेष भाव तथा विशेष रस की अभिव्यक्ति के लिये विशेष प्रकार के छन्द ही उपयुक्त होते हैं। आधुनिक युग के सुप्रसिद्ध कवि पंत ने इस संबंध में अपने विचार इस प्रकार एकट किये हैं:—

“भिन्न भिन्न छन्दों की भिन्न भिन्न गति होती है, और तदनुसार वे रस विशेष की सृष्टि करने में भी सहायता देते हैं। रघुवंश में ‘अज-विलाप’ का वैतालीय छन्द करुण-रस की अवतारण के लिए कितना उपयुक्त है? जैसे अधिक उद्वेग के कारण उसका कण्ठ गद्गद् हो गया हो, भर गया हो। यदि विहाग राग की तरह उस छन्द का चित्र भी कहीं होता तो उसकी आँखों में अवश्य आँसुओं का समुद्र उमड़ता हुआ मिलता। मालिनी छन्द में भी करुण-आह्वान अच्छा लगता है।”

रत्नाकर जी ने इसी सिद्धान्त को सामने रखकर विभिन्न वर्णनों के लिए विभिन्न छन्दों को चुना। उन्होंने मुक्तक रचनाओं के लिये अपनाया था कवित्त, सबैया, दोहा, छप्पय तथा बरवै, प्रबन्ध रचनाओं के लिये केवल रोला। वे केवल कवि तथा साहित्याचार्य ही नहीं थे बल्कि पिंगलाचार्य भी। उनके ‘घनाक्षरी-नियम रत्नाकर’ तथा ‘दोहा-नियम रत्नाकर’ उनके छन्द-शास्त्री होने का प्रमाण सदा देते रहेंगे।

कवि ने शांत, शृंगार तथा वीर इन तीनों के लिए कवित्त छन्द को चुना है। इसीलिए, ‘वीराष्ट्र’ जिसमें वीर तथा उसके सहयोगी रौद्र ही की प्रधानता है; ‘शृंगार लहरी’ जिसमें केवल शृंगार ही की प्रधानता है; ‘उद्धव शतक’ जिसमें शान्त तथा विप्रलम्भ शृंगार की प्रधानता है; ‘गङ्गालहरी तथा विष्णु लहरी’ जिसमें विशेष रूप से शांत तथा अद्भुत की प्रधानता है—की रचनाओं में कवित्त छन्द का ही प्रयोग किया है।

वास्तव में कवित्त छन्द का प्रयोग सभी रस में किया जा सकता है, पढ़ते समय थोड़ा लय में अन्तर कर देने से उसे

सभी रसों के अनुकूल बनाया जा सकता है। सवैये का प्रयोग विशेष रूप से शृंगार में ही कवि ने किया है।

कविवर रत्नाकर को रचनाओं के अध्ययन से इस बात का विश्वास और भी दृढ़ हो जाता है। उनकी कोई रचना ऐसी नहीं है जिसमें छन्द-शास्त्र के नियमों का पूर्णरूप से पालन न किया गया हो। भावों की रक्षा करते हुए छन्द शास्त्रों के नियमों का पालन करना कितना कठिन है; इसे वे ही लोग जान सकते हैं जिन्हें कभी इस कण्टकाकीर्ण मार्ग पर पदार्पण करने का अवसर मिला हो।

सवैया छन्द में अपनी सुविधा के अनुसार रत्नाकर जी कभी कभी गुरु को लघु भी मान लेते थे। पर ऐसा सर्वत्र नहीं हुआ है। केवल अंगुली पर गिने जाने वाले स्थानों पर ही ऐसा किया है। यहां इसका एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

॥ S ॥ S ॥ S S । S । ॥ S ॥ S ॥ S । S S
“बरजौ बृथा ढारिबे सौ अंसुवा हम जीवन सौं कर धौइबो है॥”

उपर्युक्त छन्द सुन्दरी सर्ववैद्या का अच्छा उदाहरण है। सात सगण तथा अन्त में गुरु का सुन्दरी सर्ववैद्या होता है। परन्तु इसमें लघु गुरु का क्रम स्थिर करने में पाठक को अपना ही एक नियम बनाना पड़ता है। अपनी सुविधानुसार उपर्युक्त पंक्ति में आये हुए कितने ही गुरु वर्णों को लघु मान कर हमें उपर्युक्त नियम की रक्षा करनी पड़ती है।

रत्नाकर जी की रचनाओं का अध्ययन करते समय ऐसा भी पता चलता है कि उन्होंने छन्दों की सङ्गीतमयता की रक्षा

के लिए कुछ अपने नियम भी स्थिर किये थे । कवित्त की लय को ठीक रखने के लिए उन्होंने कुछ अपने नियम भी बनाये थे जिनका पालन वे सदा करते रहे । उनमें से कुछ ये हैं—

(१) छन्द के आदि में और चार, आठ, बारह, सोलह, चौबीस तथा अट्ठाइस वर्णों के पश्चात् यदि कोई शब्द आरम्भ हो तो उसके आदि में जगण (|s|) तथा तगण (ss|) न पड़ने पावे ।

(२) तीन, सात, ग्यारह, पन्द्रह, उन्नीस, तेईस और सत्ताइस अक्षरों के पश्चात् जो शब्द आवे और एक अक्षर से अधिक का हो तो उसके आरम्भ में लघुगुरु (|s) का होना आवश्यक है । ऐसा करने से रत्नाकर जी की रचनाओं में एक प्रकार का नाद सौन्दर्य आ गया है ।

कहीं कहीं तुक के लिए भी कवि को व्याकरण के नियमों की अवहेलना करनी पड़ी है । यहाँ उसका एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

“फिर्यौ अस्व चहुँ ओर छोर छिति की सब छानी ।

पै मनसायौ नैकुँ नाहिँ कोउ प्रति भट मानी ॥”

छोर शब्द पुलिङ्ग है पर यहां छानी शब्द का प्रयोग स्त्रीलिंग के रूप में किया गया है । अतः व्याकरण की दृष्टि से यह प्रयोग अशुद्ध है । इस शब्द को यहाँ बहुवचन होना चाहिए था पर ऊपर के तुक की पूर्ति के लिए कवि को इस शब्द का प्रयोग एक वचन में करना पड़ा । रत्नाकर जी की दुनिया को अधिकांश हिन्दी प्रेमी कवित्त, सवैया, रोला, दोहा तथा छप्पय

तक ही सीमित मानते हैं। किन्तु अन्य छन्दों—विशेष रूप से बरवै पर—उनका अच्छा अधिकार था। रत्नाकर जी के बरवै रहीम से टक्कर लेते थे। उदाहरणार्थ दो बरवै देखिये:—

“नव नीरद-दामिनी-दुति जुगल-किसोर ।

पेखि उदित मन नाचत जीवन मोर ॥

× × × ×

पिय पयान की बतियां सुनि सखि भोर ।

आंस नहीं दग आवत जीवन मोर ॥”

कुछ खटकने वाली बातें

रत्नाकर जी ने अपनी बहुत सी रचनाओं में अपने शास्त्रीय ज्ञान तथा प्रखर पाण्डित्य का परिचय भी दिया है, इसी कारण उनकी रचनाएँ कहीं कहीं इतनी जटिल हो गयी हैं कि सर्वसाधारण के लिये उनका रसास्वादन करना कठिन हो जाता है। इससे कविता के प्रसाद गुण में बड़ी बाधा पहुँचती है। यहाँ उसके दो एक उदाहरण पर्याप्त होंगे।

“भयौ हुतौ भ्रू-भंग-भाव जो भव निदरन कौ ।

तामैं पलति प्रभाव पर्यौ हिय हेरि हरन कौ ।

प्रकट सोइ अनुभाव भाव औरै सुखकारी ।

है थाई उतसाह भयौ रति कौ संचारी ॥”

जिसे साहित्य शास्त्र का ज्ञान नहीं, जो रस-सिद्धान्त की बारीकियों से परिचित नहीं, जो बेचारा यह नहीं जानता कि स्थायी भाव किस चिड़िया का नाम है और संचारी भाव किसे कहते हैं, उस बेचारे को क्या आनन्द प्राप्त होगा। इन पंक्तियों

में। इसी प्रकार का एक दूसरा उदाहरण भी लीजिए—
 पुण्यतोया भगवती भागीरथी हिमालय से धराधाम पर उतर
 चुकी हैं, सगर पुत्रों का उद्धार करने के लिये तेजी के साथ बही
 जा रहीं हैं। इसी का वर्णन करते हुये कविवर रत्नाकर
 कहते हैं:—

“कहुँ विस्तर थल पाइ बारि विस्तार बढ़ावति ।

लघु गुरु बीचि पसारि छन्द प्रस्तार पढ़ावति ।”

जिस भोले पाठक को यह ज्ञान नहीं कि छंद शास्त्र में
 लघु का चिन्ह एक सरल रेखा और गुरु का चिन्ह एक सर्पाकार
 वक्र रेखा होता है, वह इस छन्द के सौन्दर्य को क्या समझेगा ?

मान लो किसी ने पिंगल की छोटी-मोटी पुस्तक को
 पढ़कर लघु गुरु का ज्ञान प्राप्त कर भी लिया, पर छन्द शास्त्र
 के प्रस्तार, नष्ट, उद्दीष्ट, मेरु तथा मर्कटी आदि से अपरिचित है
 तो वह उपर्युक्त पद्य के ‘छन्द प्रस्तार पढ़ावति’ को क्या खाक
 समझेगा ?

इस प्रकार के पाण्डित्य प्रदर्शन से कहीं कहीं कवि
 अपने साधारण ज्ञान वाले पाठक के लिये दुर्बोध हो जाता है।

कहीं कहीं कवि ने तुकान्त की ओर विशेष ध्यान नहीं
 दिया है:—

ताकैं चारों ओर बने जँगला बेता के,

बन हंस बिन माहिं प्रसंसनीय सुषमा के ।

कवि ने शृंगार के नग्न वर्णन में कहीं कहीं लोक-सीमा
 का उलंघन भी कर दिया है इसका एक उदाहरण विपरीत रीति
 वाला यह कवित्त है—“प्रथम समागम को बदलो चुकाई लेत ।”

रत्नाकर के ग्रन्थ आलोचना की कसौटी पर

(१) उद्धवशतक

उद्धवशतक की मूल प्रेरणा

व्रजवाणी का सौन्दर्य उद्धव-गोपी सम्वाद में निखर उठा है। कृष्णभक्त कवियों की कोमल कान्त पदावली से इसका श्रीगणेश होता है। उद्धव-गोपी सम्वाद से सम्बन्ध रखने वाली ये रचनाएँ 'भ्रमर-गीत' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

प्रश्न हो सकता है उद्धव-गोपी सम्वाद का नाम भ्रमर-गीत क्यों पड़ा ? इसके उत्तर में केवल यही कहा जा सकता है कि भ्रमर, कोकिल तथा काक चिरकाल से ही भारतीय साहित्य में प्रेमियों के उपालम्भ के पात्र रहे हैं। गोपियों ने भी भ्रमर की आड़ लेकर उद्धव तथा श्रीकृष्ण को खरी-खोटी सुनाई थी। इसी कारण यह उद्धव-गोपी सम्वाद भ्रमर-गीत के नाम से प्रसिद्ध हुआ। भक्तप्रवर नन्ददास की ये पंक्तियाँ इसे स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त होंगी—

“ताही छिन एक भँवर कहूँ ते उड़ि तहँ आयौ ।

व्रजबनिता के पुअ मांझ गुअत छबि छायाँ ।

बन्ध्यौ चाहे पाँय पर अरुण कमलदल जानि ।

सो मन ऊधौ को मनौ प्रथमहि प्रकथ्यौ आनि ॥

मधुप को भेष धरि ॥

ताही भँवर सौ कहत सबै प्रति उत्तर बाटें ।

तर्क वितर्कन जुक्त प्रेम रस रूपी घातैं ॥

जनि परसौ मन पाय हौ गयो अनन्द रसचोर ।

तुमहीं सौ कपटी हुतो नागर नन्द किसोर ॥

इहाँ ते दूर हो ॥”

अष्टछापी कवियों ने श्रीमद्भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण को आधार मान कर भ्रमर-गीत की सृष्टि की है। श्रीमद्भागवत ब्रह्मवैवर्त पुराण में उद्धव-गोपी सम्वाद का उतना विस्तार नहीं जितना कृष्णभक्त कवियों ने पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तों को सामने रखकर श्रीमद्भागवत के उद्धवगोपी सम्वाद का रूप ही बदल दिया। वास्तव में भ्रमर गीत उद्धव तथा गोपियों के बीच होने वाला छोटा सा शास्त्रार्थ है। इस शास्त्रार्थ में उद्धव का पक्ष है ब्रह्मज्ञान तथा योगसाधन द्वारा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके मुक्तिलाभ करना, और गोपियों का विषय है प्रेम और भक्ति द्वारा आनन्दमय भगवान् कृष्ण का सामिप्य।

सुकवि सूर ने भ्रमर गीत का सविस्तार वर्णन किया है। उन्होंने उद्धव द्वारा भगवान् श्री कृष्ण का जो सन्देश यशोदा तथा गोपियों के पास भिजवाया है उसमें श्री कृष्ण के मथुरा रह जाने का सारा दोष नन्द के ही सिर मढ़ दिया गया है। भगवान् श्री कृष्ण नन्द को दोषी ठहराते हुये कहते हैं:—

“कहियो नन्द कठोर भए ।

हम दोउ बीगै डारि-पर-घरै मानों थाति सौंपि गए ॥”

नन्द को सब प्रकार से दोषी ठहरा कर कुँवर कन्हैया ने यशोदा मैया के पास यह संदेशा भेजा:—

“नीके रहियो जसुमति मैया ।

आवेंगे दिन चारि पांच में हम हलधर दोउ भैया ॥”

यशोदा माता से बिछड़ जाने पर नटवर नट नागर वात्सल्यमयी जननी के स्नेह से वंचित हो गये। इसीलिए उन्होंने अपने हृदय की वेदना को माता यशोदा के प्रति इन शब्दों में प्रकट किया था:—

“जादिनु ते हम तुम तैं बिछुरे काहु न कहाँ कन्हैया ।

कबहुँ प्रात न किया कलेवा, साँझ न पीनी धैया ॥”

यशोदा मैया को जो सन्देश श्री कृष्ण ने दिया था उसमें राधा के सम्बन्ध में भी एक बात कही गयी थी। बात यह थी:—

“बंसी बेनु संभारि राखियो और अबर सबेरो ।

मति ले जाय चुराय राधिका कछुक खिलौनो मेरो ॥”

उद्धव को यह सब समझा देने के बाद मुरली मनोहर ने ब्रजाङ्गनाओं के सम्बन्ध में उद्धव से यह कहा: —

“सुरति संदेस सुनाय मेटो बल्लभिनि को दाहु ।”

भगवान कृष्ण को भय था कि कहीं गोपियाँ उनके विरहानल में जलकर भस्म न हो जाँय। इसीलिए उन्होंने गोपियों को सान्त्वना देने के लिये उद्धव को भेजा। ब्रह्मज्ञानी उद्धव भगवान के संदेश को लेकर गोपियों के पास गये तो सही, पर गोपियों की मीठी चुटकियों और व्यंग्योक्तियों ने उनके ब्रह्म-ज्ञान का नशा ढीला कर दिया।

रीतिकालीन कवियों पर भ्रमर गीत का प्रभाव:—

यह एक बैधी हुई परम्परा थी। इसी परम्परा को लेकर हिन्दी कवि बहुत दिनों तक काव्य-कौशल दिखाते चले आये। कृष्णभक्त कवि ही नहीं प्रत्युत रीतिकालीन कवियों ने भी इस परम्परा में योग दिया। उद्धव तथा गोपियों की इस नौकभोंक में बेचारी कुब्जा की खूब दुर्दशा हुई। रीतिकालीन कवि तो इस मामले में सबसे आगे बढ़ गये। पद्माकर का एक कवित्त इस सम्बन्ध में बहुत सुन्दर बन पड़ा है:—

“जावत उसासी दुख लागै हाँसी सुनि,
दासी उर लाइ कहो को नहिं दहा कियो।
कहै पद्माकर हमारे जान अबो उन,
तात को न मात को न भ्रात को कहा कियो ॥
कंकालिनी कूबरी कलंकिनी कुरूप तैसी,
चेटकिनी चेटी ताके चित्त को कहा कियो।
राधिका की कहवत कह दीजो मोहन सों,
रसिक सिरोमनी कहाइ धौं कहा कियो ॥”

रीतिकालीन कवियों ने कुब्जा की ओर से बकालत की। गोपियों को कुब्जा की ओर से खूब जलीकटी सुनवाई। ग्वाल-कवि और नवनीत चौबे ने कुब्जा की ओर से खूब पैरवी की। ग्वालकवि का एक कवित्त देखिये:—

“गोपी मत लोपी की सुनी मैं बात कहन पै,
मों को कुजातनी कमीनी कहि बोलि वे
आपन न औगुन गिनत पर-पति-पागी,
ऐसी बेसरम करें मोहिं सों ठिठोली वे।

‘ग्वाल कवि’ छिप छिप अंधियारी रातन में
 सोए पति त्यागि कै किबारेँ मूँदि खोली वे
 ‘बनन में बागन में यमुना किनारन में
 खेलन खरान में खराब होत डोलि वे ।”

कविवर रहीम ने अपने बरवै नायिका भेद में भी उद्धव-
 गोपी-संवाद विषयक कुछ बरवै दिये हैं। जिनमें से उदाहरणार्थ
 ४ बरवै नीचे दिये जाते हैं:—

“कहा छलत हो ऊधौ, दै परतीति ।
 सपनेहु नहिं बिसरै, मोहिनी मीति ॥”

× × × ×

“ब्रज वासिन के मोहन, जीवन प्रान ।
 ऊधौ यह संदिसवा, अकह कहान ॥”

× × × ×

“कहा कान्ह से कहनौ, सब जग साखि ।
 कौन होत काहू के, कुबरी राखी ॥”

× × × ×

“घेर रह्यौ दिन रतियां, बिरह बलाय ।
 मोहन की यह बतियां ऊधौ हाय ॥”

कविवर मतिराम ने भी उद्धव-गोपी-संवाद विषयक
 कवित्त सवैयाँ की रचना की है। उदाहरणार्थ एक सवैया
 देखिये:—

“ऊधो जू सूधो बिचार है धौं जू कलू समुझै हम हूँ ब्रज बासी ।
 मानि है जो अनुरूप कहौ ‘मतिराम’ भली यह बात प्रकासी ॥
 जोग कहां मुनि लोगन जोग कहां अबला मति है चपला सी ।
 स्याम कहां अभिराम सरूप कुरूप कहां वह कूबरी दासी ॥”

मतिराम ने अष्टछापी कवियों की बँधी हुई परम्परा में योग देने के लिये कुछ ऐसी रचनाएँ भी की हैं जिनमें भ्रमर को बीच में रखकर उद्धव को फटकारा गया है। इस सम्बन्ध में एक दोहा देखिये:—

“पगी प्रेम नन्दलाल के हमें न भावत जोग ।

मधुप राज पद पाय कै, भीख न मांगत लोग ॥”

उद्धव-गोपी संवाद विषयक बहुत सरस सवैया तथा कमनीय कवित्त देव जी ने लिखे हैं। उदाहरणार्थ देव जी का एक कवित्त दिया जाता है। उद्धव श्याम का सन्देश लेकर ब्रज में आये हैं। ब्रज-बालाएँ इस सन्देश को सुनने के लिये व्याकुल हैं। देखिये कितना सुन्दर कवित्त है:—

“ऊधो आये ऊधो आये, हारि को संदेसौ लाये,

सुनि गोपी-गोप धाये, धीर न धरत हैं ।

भोरी लाग दौरीं उठीं भोरी लौं भ्रमति मति,

गनात न गनो गुरु लोगन दुरत हैं ॥

झँ गई बिकल बाल बालम वियोग भरी,

जोग की सुनत बात गात ज्यों जरत हैं ।

भोर भये भूसण सभ्हारे न परत अंग,

आगे को धरत पग पाऊ को परत हैं ॥”

कृष्ण के योग के सन्देश को सुनकर गोपियाँ खीज उठीं। इसीलिए उन्होंने उद्धव से चुटकियाँ लेते हुए कहा:—

“जोगहि सिखै है जो ऊधो जो गहि के हाथ हम,

सो न मन हाथ, ब्रजनाथ साथ वै चुकीं ।

‘देव’ पंच सायक नचाय खोलि पंचन मैं,
 पंच हू करनि पंचामृत सो अचै चुकीं ॥
 कुल बधू हूँ, कै हाय हाय कुलटा कहाई अरु,
 गोकुल के कुल में कलंक सिर लै चुकीं ।
 चित होत हित न हमारे नित और सो तौ,
 वाही चित चोरहि चितौ चित दै चुकीं ॥”

कविवर पद्माकर ने भी उद्धव-गोपी संवाद विषयक कवित्त तथा सवैयाँ की रचना की है। उदाहरणार्थ उनका एक कवित्त देखिए:—

पात बिन कीन्हे ऐसी भांति गन बेलिन के,
 परत न चीन्हें जे ये लरजत लुञ्ज हैं ।
 कहै ‘पद्माकर’ विलासी या वसन्त के,
 सु ऐसे उतपात गात गोपिन के भुञ्ज हैं ॥
 ऊधो यह सूधो सो संदेसो कहि दीजो भलो,
 हरि सों, हमारे ह्यां न फूले बन कुञ्ज हैं ।
 किंसुक गुलाब कचनार औ अनारन को,
 डारन पै डोलत अंगारन के पुञ्ज हैं ॥”

गोपी-उद्धव-संवाद के सम्बन्ध में दास जी का एक सवैया भी दर्शनीय है :—

“ऊधो तहाँ इ चलो लै हमै जहँ कूबरी-कान्ह बसै इक डोरी ।
 देखिए दास अघाइ अघाइ तिहारे प्रसाद मनोहर जोरी ॥
 कूबरी सों कछु पाइये मंत्र लगाइये कान्ह सों प्रेम की डोरी ।
 कूबर भक्ति बढ़ाइये वृन्द चढ़ाइये वेदन चन्दन रोरी ॥”

भारतेन्दु जी ने भी उद्धव-गोपी संवाद संबंधी कितने ही कवित्त और सवैया लिखे थे। इस सम्बन्ध में उनका यह सवैया बहुत प्रसिद्ध है:—

ऊधो जू सूधो गहो वह मारग; ज्ञान की 'तरे' जहां गुदरी है।
कोउ नहौ सिख मानि है ह्यौं इक, श्याम की प्रीति प्रतीति खरी है ॥
ये ब्रजबाल सबैं इक सी 'हरिचंद' जू मण्डली ही बिगरी है।
एक जो हो तो ज्ञान सिखाइए कूप ही में यहां भांग परी है ॥”

(इस प्रकार उद्धव ब्रज भारती के एक विशेष अंग बन गए। कृष्णभक्त कवियों ने ही नहीं बल्कि रीतिकालीन कवियों ने भी उद्धव-गोपी संवाद को लेकर सैकड़ों कवित्त तथा सवैया की रचना की। यही दिखलाने के लिए हमने ऊपर बहुत से कवियों की उद्धव-गोपी-संवाद-विषयक रचनाओं का उल्लेख किया। इस युग में भी ब्रजभाषा के थोड़े बहुत कवि जो विद्यमान हैं, उन्होंने भी उद्धव-गोपी संवाद से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी रचनाएँ की हैं। यदि ब्रजभाषा में भविष्य में रचनाएँ होती रहीं तो उद्धव-गोपी संवाद पर भी कवियों की लेखनी चलती रहेगी। वतमान युग के ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि डाक्टर रामशंकर शुक्ल “रसाल” ने उद्धव-गोपी संवाद विषयक बहुत सुन्दर कवित्त तथा सवैया लिखे हैं। उदाहरणार्थ उनका भी एक सवैया देखिये:—

उद्धव के शुष्क ज्ञान से परेशान होकर गोपियाँ कहती हैं:—

“यह औसर स्याम कथा कौ भलौ, मो गयौ रसना की रला रली मैं।
कहिबै, सुनिबै की रही सो रही, बस बातन की ही बलाबली मैं ॥

मन मीन मलीन मरे से परै, यहि ज्ञान की कोरी दलादली मैं ।
मनभावती हू कहि जाते कछु, अब उधव ऐसी चलाचली मैं ॥”

रत्नाकर जी ठहरे रीतिकाल के अन्तिम प्रतिनिधि कवि ।
ऐसी दशा में यह कैसे हो सकता है कि वे इस व्यापक प्रभाव
से बचे रहें ? उन्होंने उद्धव-गोपी संवाद विषयक जो रचनाएँ
की हैं वे इसी प्रभाव से प्रभावित हैं । फिर भी उनकी आत्मा
एक भक्त की आत्मा जान पड़ती है । उनकी कविता कामिनी
का शरीर मात्र ही रीतिकालीन उपादानों से गठित हुआ है ।

रत्नाकर जी ने उद्धव शतक के अतिरिक्त उद्धव-गोपी
संवाद से सम्बन्धित दो सवैया और भी लिखे हैं । इन्हें शतक
में स्थान न देने का कारण है उनका घनाक्षरी छन्दों में लिखा
जाना । हो सकता है छन्दों में भिन्नता होने के कारण उन्होंने
इन दोनों सवैयाओं को अपने शतक में स्थान न दिया हो ।
रत्नाकर जी के वे दोनों सवैया ये हैं:—

आए बुझावन कौं ब्रज में पर, ब्रह्म हुतासन की लव लावत ।
हैं रतनाकर-मीत अहो नहिं, रंचक धीरज-नीर सिंचावत ॥
लाज की आहुति पारि चले इत, ताही सौं उधव हाय कहावत ।
लाइ गए हरि आगि वियोग की, औ तुम जोग की बात चलावत ॥

— प्रकीर्ण पद्यावली (१७) स्फुटकाव्य

“कान्हू के प्रेम व्यथा की कथा तुम ऊधौ जथाविधि भाषि सुनाई ।
त्यों रतनाकर आंसनि की अरु सांसनि की सब बात बताई ॥
एतियै और कहो करुना करि जातैं मिटै चित्त की दुचिताई ।
जोग-गनेस बखानत मैं मुसकानि हूं आनन पै कहु आई ॥”

इन दो सत्रयों के अतिरिक्त यह एक कवित्त और मिलता है:—

वेरि लीनि आनि जानि अबला अकेलि मानि,
 मरक अनङ्ग की उमंग सरसत हैं ।
 कहै रतनाकर पपीहा कड़खैत लिए,
 पो कहां कहाय चढ़ि चाय अरसत है ।
 कंसहु के राज भए ऐसे ना कुकाज हाय,
 जैसे आज ऊधो दुख-साज दरसत हैं ।
 बादर से बीर ब्योम वायु के विमान बैठि,
 बूँदनि के बान बनित पै बरसत हैं ॥

रत्नाकर तथा कृष्णभक्त कवियों की रचना-पद्धति में अन्तर:—

उद्धव शतक का उद्गम भ्रमर गीत के नाम से प्रसिद्ध यही उद्धव-गोपी संवाद है। फिर भी यह कृष्णभक्त कवियों से कई बातों में भिन्न है। रत्नाकर जी ने इस काव्य की रचना में कृष्णभक्त कवियों की रचना-पद्धति को न अपनाकर रीतिकालीन कवियों की परम्परा में ही याग दिया। साथ ही उन्होंने किसी सम्प्रदाय विशेष के सिद्धान्त का तर्क द्वारा समर्थन न करके एक छोटे मोटे शास्त्रार्थ की रचना नहीं की। रत्नाकर जी (Lyric) गीत काव्य के काव नहीं थे। वे शास्त्रीय पद्धति के कवि (Classical Poet) थे। इसीलिए उन्होंने प्रगीत रचना की ही नहीं।

आचार्य शंकर का अद्वैतवाद केवल दार्शिकों की मिमांसा तक ही सीमित था। सहृदय भावुक भक्तों के लिए उसमें कोई आकर्षण नहीं था। उद्धव-शतक की गोपियों की

यह उक्ति इस संबन्ध में बहुत ही सुन्दर जान पड़ती है:—

“ऊधौ ब्रह्मज्ञान कौ बखान करतै न नेक । ✓

देख लेते कान्ह जो हमारी अँखियान तै ॥”

इसे रत्नाकर जी ने दृष्टिकोण की भिन्नता दिखलाया है। अष्टछापी कवियों ने इसी दृष्टिकोण की भिन्नता को अपने भ्रमरगीत में शास्त्रार्थ के रूप में दे डाला है।

ब्रह्मवाद मुक्ति के पीछे भटकता है। उसमें विलीनीकरण के अतिरिक्त और धरा ही क्या है? अंश का अंशी में मिल जाना ऐसा ही है जैसा बूंद का समुद्र में मिल जाना और अपने अस्तित्व को खो देना। समुद्र तो ज्यों का त्यों ही बना रहा, पर बेचारी बूंद कहीं की नहीं रही। उद्धवशतक की गोपियों का यह कथन इस संबन्ध में द्रष्टव्य है:—

“जै है बन बिगरि न बारिधिता बारिधि की ।

बूंदता बिलय है बूंद बिबस विचारि की ॥”

भक्त इसी लिए अपने प्रभु के दर्शन चाहता है, मुक्ति नहीं। तभी तो उद्धवशतक की गोपियाँ उद्धव को फटकारती हुई कहती हैं:—

“ब्रह्म मिलिबै ते कहा मिली है बतावो हमें ।

ताकौ फल जब लौं मिलै न नन्दलाल हू ॥”

× × × ×

“सहि हैं तिहारे कहैं साँसति सबै पै बस ।

एति कहि देह कै कन्हैया मिली जायगौ ॥”

यही नहीं बल्कि गोपियाँ यह भी कहती हैं कि हम तुम्हारे आदेशानुसार उस अलख, अरूप ब्रह्म का चित्र अपने प्राणपट पर अंकित करके जायगीं। ऐसा करने से:—

“जै हैं प्राणपट लै सरूप मन मोहन कौ।

ताते ब्रह्म रावरे अनूप को मिलैहैं हम ॥

ज्यौ पै मिल्यौ तौ धाड़ चाव से मिलैगी पर।

ज्यौ न मिल्यौ तौ पुनि इहाँ ही लौटि एहैं हम ॥”

शंकर के ब्रह्मज्ञान को लेकर सन्तों ने अपना अलग ही ताना-बाना खड़ा कर दिया था। यह सन्तों का शुष्क ब्रह्मज्ञान जनता जनार्दन को अपनी ओर नहीं खींच सका। इसीलिए तो वैष्णव कवियों ने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से इस रूखे ब्रह्मज्ञान की खूब आलोचना की। अष्टछापी कवियों की रचना का एक उद्देश्य यह भी था कि वे महाप्रभु बल्लभाचार्य के सिद्धान्तों का समर्थन करने के साथ साथ सन्तों के ब्रह्मज्ञान की भी खबर लें। वे जानते थे कि यह ब्रह्मज्ञान सर्वसाधारण के काम की चीज नहीं है। इसे समझना जनता जनार्दन की बुद्धि के बाहर है। “ज्ञानपंथ कृपान की धारा” कह कर तुलसी ने यह बात और भी स्पष्ट कर दी। उद्धव गोपियों को कृपाण की धार पर चलाना चाहता था। इसीलिए उस बेचारे को गोपियों की व्यंगोक्तियाँ सुननी पड़ीं—

ब्रह्मज्ञान से भी कठिन है योगसाधन। योगसाधन गोरखपंथियों से प्रभावित सन्तों द्वारा प्रचारित हुआ। सीधी सादी जनता को योग के पचड़ों में डालकर अथवा बुद्धि को चक्कर में डालनेवाली उलटबासियाँ सुनाकर ये सन्त एक नया

पंथ तैयार कर रहे थे। भावुक भक्त इस कण्टकाकीर्ण मार्ग पर क्यों चलने लगे। जब हमारा प्रभु हमें अयोध्या तथा मथुरा के ही मन्दिरों में मिल सकता है, उसे हम कालिन्दी के कूल पर गोरी गोरी गोपियों के साथ छेड़ छाड़ करते हुए देख सकते हैं, फिर क्या आवश्यकता है त्रिकुटी में ध्यान करने की, कानों में मुद्रा पहिनने की, शरीर पर राख पोतने की, तथा बलपूर्वक इन्द्रिय दमन की। तभी तो उद्धवशतक की गोपियों ने उद्धव से चुटकियाँ लेते हुए कहा था:—

“चोपकरि चन्दन चढ़ायौ जिन अंगन पै,
 तिन पै बजाइ तूरि धूरि दरिबौ कहौ ।
 रस रतनाकर सनेह निखारयौ जाहि,
 ता कच कौं हाय जटाजूट बारिबौ कहौ ॥
 चंद अरविंद लौ सराह्यौ ब्रजचंद जाहि,
 ता मुख कौं काक चंचवत करिबौ कहौ ।
 छेदि छेदि छाती छलनी कै बैन-बाननि सौं,
 तामैं पुनि ताइ धीर-नीर धरिबौ कहौ ॥”

भंवरे को बीच में रखकर कविवर रत्नाकर ने उद्धव तथा कृष्ण को कोई उपालम्भ नहीं दिया। इस बात में भी वे बन्धी हुई पुरानी परिपाटी से कुछ पृथक् जान पड़ते हैं। समूचे उद्धवशतक में एक ही ऐसा कवित्त है जिसमें भ्रमर को बीच में रखकर उद्धव को उपालम्भ दिया गया है। वह कवित्त यह है:—

कान्हू कूबरी के हिय हुलसे-सरोजनि तैं,
 अमल अनंद-मकरंद! जो ढरारै है ।

कहै रतनाकर, यौ गोपी उर संचि ताहि,
 ता मैं पुनि आपनौ प्रपंच रंच पारै है ॥
 आइ निरगुन गुन गाइ ब्रज मैं जो अब,
 ताकौ उद्गार ब्रह्म गान रस गारै हैं ।
 मिलि तो तिहारौ मधु मधुप हमारै नेह,
 देह मैं अछेह बिष बिषम बगारै हैं ॥”

हमारे यहाँ इस प्रकार के शतक काव्यों की रचना कोई नयी नहीं है। संस्कृत में अमरकशतक, तथा भर्तृहरिशतक इसी प्रकार के काव्य हैं। प्राचीन कवि अपनी मुक्तक रचनाओं को जब वह प्रचुर मात्रा में हो जाती थीं तो उनमें से चुने चुने पद्य रत्नों को लेकर वे उन्हें शतक, सप्तशती (सतसई) अथवा हजारों के रूप में संग्रह कर देते थे। उसी परम्परा के अनुसार उद्धवशतक का संकलन किया गया। इस संकलन की एक विशेषता है, वह यह कि यह है तो मुक्तक काव्य पर इसमें रत्नाकर ने अपने पद्य रत्नों की माला इस प्रकार गूँथी है जिससे उसका विशेष क्रम बंध गया है। अतः हम कह सकते हैं कि उद्धवशतक मुक्तक काव्य होते हुए भी एक सूत्र में इस प्रकार गूँथा हुआ है कि जिसके कारण उसमें प्रबन्धात्मिकता आगयी है।

उद्धवशतक पर अन्य कवियों का प्रभाव—

उद्धवशतक में बहुत से पद्य ऐसे भी हैं जिनमें हम परस्पर भाव साम्य भी पाते हैं। इसका कारण यह है कि ज़ब एक ही विषय पर बहुत से कवि लिखते हैं तो उनके भाव

टकरा ही जाते हैं। रत्नाकर के इस कवित्त से निम्नोक्त कवित्त की तुलना कीजिए—

“वे तो बस बस न रमावै मन रंगत ये,
 भसम रमावै वे ये आपुहीं भसम हैं।
 सांस सांस माहि बहु बासर बितावत वे,
 इनकै प्रतेक सांस जात ज्यौं जनम हैं ॥
 ह्वै कै जग भुक्ति सौ विरक्त मुक्ति चाहत वे,
 जानत ये भुक्ति मुक्ति दोऊ विष-सम हैं।
 करिकै विचार ऊधौ सूधौ मन मांहि लखौ,
 जोगी सौं वियोग-भोग-भोगी कहा कम हैं ॥

—रत्नाकर

जोगि तजे जग हम जग जोग दोऊ तजे,
 जोगि लावै छार हम छारहु कै मटि हैं।
 जोगी बेधे कान हम हिय अरु प्रान बेधे,
 जोगी कहै नाथ हम नाथ नाथ रटि हैं ॥
 जोगी कान मुद्रा हम भूषण बनाये राखे,
 म्हारे शिर केश बहु जोगी शिर जटि हैं।
 जान के अजान आज ये कहा भये ऊधौ जी,
 जोगी की जुगत सौं विोगी कहा घटि हैं ॥

—एक प्राचीन अज्ञात कवि

उद्धव-शतक का यह कवित्त प्रह्लाद कवि के निम्नोक्त कवित्त से मिलाकर देखिये:—

“ज्यौहि कछु कहुन संदेस लग्यौ त्योंही लख्यौ,
 प्रेम-पूर उमगि गरे लौं चढ्यौ आवै है।

कहै रतनाकर न पांव टिकि पावैं नेकु,
 ऐसौ दृग द्वारनि स-वेग कढ़्यौ आवै है ॥
 मधुपुरि राखन को बेगि कछु ब्यौत गढ़ौ,
 धाड़ चढ़्यौ बट कै न जौपै गढ़्यौ आवै है ।
 आयौ भज्यौ भूपति भगीरथ लौं हौं तौं नाथ,
 साथ लग्यौ सोई पुन्य पाथ बढ़्यौ आवै है ॥

—रत्नाकर, उद्धव-शतक ११४

योग न गयो हौं वियोग बारि बारिधि में,
 बृद्ध बध्यौ हौं नाथ नारी नैन यूं बहे ।
 गंगा हूँ सहस्र धारा अधिक सुधारा जान,
 बरषा न होय जो रहोगे गिरिहू गहे ॥
 एतौ जल भूमि न समाये कहूँ बारिधि में,
 मुनी पै न अच्यो जात कान खोल हौं कहे ।
 कवि प्रह्लाद जो मिलाप पाल बांधो नहिं,
 बट के बटूक पात सांवले भले रहे ॥

—प्रह्लाद कवि

रत्नाकर के इस कवित्त की आलम कवि के सवैये से
 तुलना कीजिये और देखिये दोनों में कितना भाव साम्य है:—

“रूप रस पीवत अधात ना हुते जो तब,
 सोई अब आँस हूँ उबरि गिरिबौ करें ।
 कहै रतनाकर जुदात हुते देखैं जिन्हें,
 याद किउँ तिनकौ अवां सौं धिरिबौ करें ।
 फिरत हुते जिन कुजनि मैं आठौं जाम,
 नैननि में अब सोई कुंज फिरिबौ करें ॥

—रत्नाकर उद्धव-शतक

“जाथल कीने बिहार अनेकन ताथल कांकरि बैठि चुन्यो करै ।
जा रसना सों करी बहु बातन ता रसना सों चरित्र गुन्या करै ॥
आलम जौन के कुँजन में करी केलि तहां अब सीस धुन्यो करै ।
नैनन में जे सदा रहते तिनको अब कान कहानी सुन्यो करै ॥”

—आलम

रत्नाकर जी का यह कवित्त बहुत लोकप्रिय हुआ है ।
अब जरा इसे भी उर्दू के इस प्रसिद्ध शेर से मिला लीजिये:—

“भूले जोग-छेम प्रेम-नेमहि निहारि ऊधौ,
सकुचि समाने उर अन्तर हरास लौं ।
कहै रतनाकर प्रभाव सब ऊने भए,
सूने भए नैन बैन अरथ-उदास लौं ॥
मांगी बिदा मांगत ज्यौ मीच उर भीचि कोऊ,
कीन्यो मौन गौन निज हिय के हुलास लौं ।
विथकित सांस-लौं चलत रुकि जात फेरि,
आंस लौं गिरत पुनि उठत उसास लौं ॥

—रत्नाकर, उद्धव-शतक १०३

“पहलु ए यार से उठने को उठे तो लेकिन ।

दर्द की तरह उठे गिर पड़े आंसू की तरह ॥”

देखिये कवित्त की अन्तिम पंक्तियों और इस शेर में
कितना भाव साम्य है । जान पड़ता है कि शेर को ही उपर्युक्त
कवित्त की पंक्तियों में ज्यों का त्यों उठा कर रख दिया गया हो ।

पांडित्य की छाप—

रत्नाकर जी उन अल्ल-छल्ली कवियों में से नहीं थे,
जिनका सारा काव्य-कौशल सुने सुनाये ज्ञान पर ही अवलम्बित

रहता है। वे थे वीणावाद्य प्रवीण के परम भक्त। वर्षों वीणा-पाणी की देहली पर माथा रगड़ने के बाद उनकी प्रतिभा (जो उनमें बीजरूप से पहिले ही से थी) जागृत हुई थी। काव्य-शास्त्र का गहरा अध्ययन करने के बाद उन्होंने अपनी ललित लेखनी का चारु चमत्कार दिखाया था। उनके काव्यों का गहरा अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इतिहास, पुराण, वेदान्त, योग, रसायन शास्त्र, तथा आयुर्वेद आदि विषयों में भी वे अपनी अबाध गति रखते थे। उनकी कविताओं का आनन्द हल्की-फुल्की रचनाओं से ही सन्तुष्ट हो जाने वाले पाठक नहीं ले सकते। उनका आनन्द तो वही ले सकता है जो काव्य रीति का पूर्ण परिचित हो। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार प्रक के राग रागिनी का आनन्द मन में उस्ताद लोग ही ले सकते हैं; उसी प्रकार काव्य रीति के अनुसार लिखी गई रचना के मर्म को काव्य-मर्मज्ञ ही समझ सकते हैं। उद्धव-शतक के कितने ही कवित्त ऐसे हैं, जिनमें उनके व्यापक और ठोस ज्ञान की गहरी छाप लगी हुई है। उद्धव-गोपी सम्बाद में उद्धव की उक्तियों को पढ़कर क्या कोई कह सकता है कि कविवर रत्नाकर का ज्ञान केवल सुना सुनाया था ? जिसे पुराणों की कथाओं का कुछ भी ज्ञान नहीं, वह बेचारा इस कवित्त का सौन्दर्य को क्या खाक समझेगा ?

“दौना चल कौ वा छटक्यौ कनूक जाहि ।

छाई छिगुनी पै छेम छिति छायो है ॥”

इसी प्रकार:—

“अंडे लौ टटिहरी कै जैं है जू विवेक बहि,

फेरि लहिबे की ताके तनक न राह है ।

यह वह सिन्धु नहीं सोखि जो अगस्त लियौ ५
 ऊधौ यह गोपिन के प्रेम कौ प्रभाह है ॥१॥
 इसी प्रकार इस कवित्त के काव्य कौशल की दाद देने
 से पहले रसायन शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक है ।

“दीन्यों प्रेम-नेत्र-गुरुवाइ गुन ऊधव कौं
 हिय सौं हमेव - हरुवाइ बहिराई कै ।

कहै रतनाकर त्यों कंचन बनाई काय
 ज्ञान अभिमान को तमाई बिनमाई कै ॥

बातनि की धौंक सौं धमाई चहुं कोदनि सौं
 निज बिरहानल तपाइ पिघलाइ कै ।

गोप की बधूटी प्रेमी बूटी के सहारे मारे
 चलचित-पारे की भसम भुकाइ कै ॥

जिसे आयुर्वेद का किंचित ज्ञान नहीं, उस बेचारे को तो
 यह कवित्त सुनाना अरण्यरोदन ही समझा जायगा ।

“रस के प्रयोगनि के सुखद सुजोगनि कै
 जेते उपचार चारु मंजु सुखदाई हैं ।

तिनकै चलावन की चरचा चलावै कौन,
 देत ना सुदर्सन हूं यां सुधि सिराई हैं ॥

करत उपाय न सुभाव लखि नारिनी कौ,
 भाय क्यों अनारिनी की भरत कन्हाई हैं ।

ह्यों तौ विषम ज्वर-वियोग को चढ़ाई यह
 पाती कौन रोग को पठवत दवाई हैं ॥” ❀

❀ इस कवित्त की तुलना बिहारी के दोहे से कीजिये:—

यह बिनुसत नगु राखि कै, जगत बड़ौ जसु लेहु ।
 जरी विषम जुरजाइयै, आइ सुदरसन देहु ॥

रस, सुजोगनि, उपचार, सुदर्शन, नारिन, विषम ज्वर, पाती आदि श्लिष्ट शब्द जो इस कवित्त में आये हैं, उन्हें समझने के लिए आयुर्वेद का साधारण ज्ञान कितना आवश्यक है, जरा इस पर तो विचार कीजिये ।

उद्धवशतक का कला पक्ष —

साहित्याचार्यों ने काव्य के दो पक्ष बताये हैं । एक भाव पक्ष और दूसरा कला पक्ष । किसी रचना में भावपक्ष प्रधान होता है किसी में कलापक्ष । केवल एक ही पक्ष से ही कोई रचना काव्य नहीं कहला सकती । काव्य में विचार तथा विचार प्रतिपादन शैली दोनों का ही होना आवश्यक है । विचार से अभिप्राय होता है भावपक्ष से और विचार प्रतिपादन शैली से अभिप्राय है कलापक्ष से ।

कविवर रत्नाकर पर रीतिकाल की स्पष्ट छाप है । अतः उनमें कलापक्ष की प्रधानता स्वाभाविक है । कोरी कलाबाजी के फेर में पढ़कर उन्होंने भावों के गले पर छुरी नहीं फेरी । ऐसा करना तो अकबर के शब्दों में,

“मानी को छोड़कर जो हों नाजुक बयानियाँ,
वह शेर क्या है रंग है लफ्जों के खून का ।”

अर्थ का अनर्थ कर देना है । तभी तो उन्होंने ऐसा नहीं किया । उनके शब्दचयन ने भावों को सुन्दर तथा स्निग्ध बनाने में सहायता दी है । उनको कला का सारा सौन्दर्य इसी शब्दचयन में है ।

आदर, आश्चर्य, शोक तथा घृणा आदि मनोभावों का प्रभावोत्पादक वर्णन करने के लिए एक ही शब्द अथवा एक ही वाक्य को बारबार कहा जाता है। इसी को हमारे साहित्य-मीमांसकों ने वीप्सा अलंकार का नाम दिया है। इसी वीप्सा अलंकार के साँचे में ढली हुई कविवर रत्नाकर की पंक्तियाँ पढ़िये:—

“सुनी गुनी समझी तिहारी चतुराई जिति,
कान्ह की पढ़ाई कविताई कुबरी की हैं।
कहै रतनाकर त्रिकाल हूँ, त्रिलोक हूँ मैं,
आनै आन नैकु ना त्रिदेव की कही की हैं ॥
कहहि प्रतीति प्रीति नीति हूँ त्रिवाचा बांधि,
उधौ सांच मनकी हिये की अरु जी की हैं।
वे तौ हैं हमारे ही हमारे ही औ,
हम उनहीं की उनहीं की उन ही की हैं ॥”

जब कोई प्रियजन हमसे विदा लेकर कहीं जाता है, तब हम उसे बारबार रोककर कुछ कहना चाहते हैं। इसी मनो वैज्ञानिक सत्य को पूर्वोक्त वीप्सा अलंकार के द्वारा कितनी उत्तमता के साथ उद्धव-शतक के कवि ने हमारे सामने रखा है। उद्धव को ब्रज से विदा करने समय गोपियाँ:—

‘रंचक हमारी सुनो रंचक हमारी सुनो,।
रंचक हमारी सुनो कहि रहि जात हैं ॥”

कृष्ण की प्रेम-पत्रिका प्राप्त करने पर गोपियों की बढ़ती हुई उत्सुकता का वर्णन कवि इसी अलंकार की सहायता से इस प्रकार करता है:—

उभकि उभकि पद कंजनि के पंजनि पै,
 पेखि पेखि पाती छाती छोहनी छुवै लगी ।
 हमकों लिख्यौ है कहा हमकों लिख्यौ है कहा,
 हमको लिख्यौ है कहा, कहन सबै लगी ॥”

अलंकार को रस प्रवाह में बाधक समझने वाले आज-कल के साहित्य वाचस्पति देखें, जरा ध्यान से इन पंक्तियों को । क्या सचमुच यहाँ अलंकारों के प्रयोग ने रस प्रवाह में बाधा उपस्थित करदी ?

वर्णमैत्री का भी रत्नाकर जी बहुत ध्यान रखते थे । उनकी रचना में अनुप्रास तो अनायास ही आ जाता है । इसके लिए उन्हें किसी प्रकार का प्रयास नहीं करना पड़ता था । इस वर्णमैत्री में विशेषता यह है कि उन्होंने कहीं भी पाठकों की आंख में चकाचौंध पैदा करने के लिये शब्दों का जाल नहीं बिछाया ।

शब्दालंकारों में उन्हें श्लेष और यमक बहुत प्रिय थे । लेकिन इनका प्रयोग करके उन्होंने दिमागी कसरत नहीं दिखाई, बल्कि इसके द्वारा उन्होंने अर्थ में एक प्रकार की रमणीयता ला दी । इसका भी एक उदाहरण देखिये:—

“विकसित विपिन बसन्तिकावली को रंग,
 लखियत गोपिनि के अंग पियराने मैं ।
 बौरै वृन्द लसत रसाल-बर बारिनि के,
 पिक की पुकार है चबाव उमगाने मैं ॥”
 होत पतझर झार तरुनि-समूहनि की,
 बहैरि बतास लै उसास अधिकाने मैं ।

कामविधि बाम की कला में मीन मेख कहा,

ऊधौ नित बसत बसन्त बरसाने मैं ॥”

उपर्युक्त कवित्त श्लेष से पुष्ट रूपक का सुन्दर उदाहरण है। “बौरे, रसाल, वारिनि, तरुनि, पतभार तथा विधि बाम आदि” शब्दों में श्लेष का चमत्कार दर्शनीय है। उद्धव-शतक के ८८ से ६३ तक के कवित्त श्लेष से पुष्ट रूपक के सुन्दर उदाहरण कहे जा सकते हैं। कोरा शब्द चमत्कार ही इनमें नहीं है, बल्कि अर्थ की रमणीयता के साथ साथ भाव गाम्भीर्य भी है। प्रत्येक ऋतु की मुख्य बातों तथा दशाओं को ब्रजोंगनाओं की विरह जन्य व्याकुलता में कलात्मक ढंग से घटित किया है। अतः हम इसे कुछ आलोचकों के शब्दों में कोरी दिमागी कसरत नहीं कह सकते।

अर्थालंकारों में हम उद्धव-शतक के कवि का भुकाव रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अत्युक्ति तथा विरोध की ओर अधिक पाते हैं। देखिये उद्धव-शतक का यह कवित्त रूपक का कितना सुन्दर उदाहरण है:—

“हेत खेत माहिं खोदि खाई सुद्ध स्वारथ को,

प्रेम तृन गोपि राख्यौ तापै गमनौ नहीं ।

करिनी प्रतीति काज करनी बनावट की,

राखी ताहि हेरि हियै हौंसनि सनौ नहीं ॥

घात मैं लगे हैं विसासी ब्रजबासी सबै,

इनके अनोखे छज छंदनि छनौ नहीं ।

बारनि कितेक तुम्हें बारन कितेक करें,

बारन, उबारन ह्वै बारन बनौ नहीं ॥”

रेखांकित शब्दों में रूपक का चमत्कार तो है ही, साथ ही साथ यदि गमनों को श्लेष मान लें तो अर्थ में और भी रमणीयता आ जाती है। इसी प्रकार करनी शब्द में कितना सुन्दर चमत्कार है। अन्तिम पंक्ति “बारन उबारन हूँ बारन बनौ नहीं” में तो यमक की छटा देखने ही योग्य है। एक ही पद्य में इतने अलंकारों का समावेश कोई शब्दों का करामाती ही कर सकता है।

इसी प्रकार:—

“प्रेम रस रुचिर विराग तुमरी में पूरी,
ज्ञान गुदरि में अनुराग सौ रतन ले।”

में उपमा से पुष्ट रूपक की छटा अवलोकनीय है।

“टूक टूक हूँ है मन मुकुर हमारौ हाय।
चूक हू कठोर बैन पाहन चलावौ ना॥”

परम्परित रूपक का सुन्दर उदाहरण है।

विहारी तथा देव को अपना पथ प्रदर्शक मानने वाले कविवर रत्नाकर की रचनाओं में अतिशयोक्ति का प्रचुर मात्रा में होना कोई बड़ी बात नहीं। इन पंक्तियों में चपलातिशयोक्ति के चातुर्य चमत्कार की चारुता देखने योग्य है।

“राधा मुख मंजुल सुधाकर के ध्यान ही सौं,
प्रेम रतनाकर हिये यों उमगत है।

त्यों ही बिरहातप प्रचण्ड सौं उमड़त अति,
ऊरध उसास कौ भूकोर यों जगत है॥

केवट विचार कौ बिचारौ पचि हारि जात,
होत गुनपाल ततकाल नभ गत है।

करत गम्भीर धीर-लंगर न काज कछू,
मन कौ जहाज डगि डूबन लगत है ॥”

[“राधा के मुखचन्द्र” के ध्यान मात्र से ही “प्रेम रत्नाकर” में ज्वार आजाना तथा “होत गुनपाल तत्काल नभ गत है” में चपलातिशयोक्ति का चमत्कार तो है ही, साथ ही उपर्युक्त कवित में रूपक की छटा भी देखने योग्य है।]

“सील सनि सुरुचि सुबास चलै पूरब की ।
औरै ओप उमगि दगनि मिदुरानै तै ॥”

इन पंक्तियों में भेदकातिशयोक्ति का चमत्कार कितना सुन्दर है। साथ ही “सील सनि सुवात चलै पूरब की” में श्लेष की छटा दर्शनीय है।

रीतिकालीन कवियों के समान रत्नाकर जी ने भी विरह ताप का वर्णन अतियुक्ति पूर्ण किया है। देखिये बेचारा उद्धव किस प्रकार अपनी जान लेकर भागा। वह गोपियों के विरह ताप से कितना परेशान है, यह उसी के मुंह से सुनिये:—

“ज्वालामुखी गिरी तै गिरत द्वेय द्रवे दैधौं,
बारिद पियौ है बरि विष के सिवाने मैं ।
कहै रतनाकर कै काली दाँव लेन काज,
फेन फुफकारे उहि गाँव दुःख-साने मैं ॥
जीवन वियोगिनि कौ मेघ अँचयो सो किधौं,
उपच्यौ पच्यौ न उर ताप अधिकाने मैं ।
हरि-हरि जासौं बरि-बरि सब बारी उठै,
जानै कौन बारि बरसत बरसाने मैं ॥”

जब गोपियां कृष्ण की प्रेम पत्रिका का उत्तर लिखकर देती हैं, उस समय का वर्णन कितना अतिशयोक्ति पूर्ण है। देखिये:—

“सूखि जात स्याही लेखनि को नेकु डंक लगे
अंक लगे कागद बररी बरि जात है ।”

लेखनी का डंक लगते ही स्याही का सूख जाना तथा कागज का सुलग जाना कितना अत्युक्तिपूर्ण वर्णन है।

रत्नाकर जी अरबी, फारसी तथा उर्दू के भी पण्डित थे, इसलिये उनका मुहाविरों पर भी खूब अधिकार था। मुहाविरों के प्रयोग ने उनकी भाषा में एक प्रकार की लाक्षणिकता ला दी है। यहां उसका एक उदाहरण पर्याप्त होगा:—

“आये हो पठाये वा छुतीसे छलिया के इते,
बीस बिसे ऊधो बीर बाबन कलांच हूँ ।
कहे रतनाकर प्रपंच न पसारो गाढ़े,
बाढ़े पै रहोगे साढ़े बाइस ही जांच हवै ॥
प्रेम अरु जोग में है जोग छूटे आठे परयौ,
एक हूँ रहे क्यों दोउ हीरा अरु कांच हवै ।
तीन गुन “पाँच” तख बहकि बतावत सो,
जै हैं तीन, तेरह, तिहारी तीन, पाँच हवै ॥”

रेखांकित शब्दों में एक प्रकार की लाक्षणिकता तो ला ही दी है, साथ ही यह भी देखने योग्य है कि इसमें वही मुहाविरे आये हैं जिनका संबन्ध गणना में आने वाले अंको से है। इसी प्रकार “दीपत दिवाकर को दीपक दिखावे कहा,’ ‘चेरी है न काहू ब्रह्म क बवा की हम,’ ‘काम विधिवाम का

कला में मीन मेख कहा', 'छाले परे पगनि', 'अधर पर जाले परे, ठठिन कसाले परे, लाले परे प्रान के' आदि पंक्तियों में भी मुहाविरों ने एक प्रकार की लाक्षणिकता उत्पन्न करदी है।

उद्धव शतक का भाव पक्ष :—

भावनाओं के चारु चित्रण में कला की कमनीयता है, हम यह ऊपर कह आये हैं। अब हम उद्धवशतक के भाव पक्ष को लेकर उस पर एक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करना चाहते हैं।

उद्धवशतक की उठान बहुत सुन्दर हुई है। सहृदय काव्य मर्मज्ञ तो इसीलिए एक बार उसे हाथ में लेकर छोड़ नहीं सकते।

भगवान कृष्ण एक बार स्नान करने के लिए जाते हैं। वहाँ देखते हैं—एक कमल को बहता हुआ। उसे देखते ही उन्हें पद्मनी[‡] राधा का स्मरण हो आता है। कमल को देखकर राधा की सुध हो आना आश्चर्य की बात नहीं, आखिर कमल भी तो सौन्दर्य का प्रतीक है! फिर राधा ठहरी पद्मिनी जाति की स्त्री! वह कमल ऊपर नीचे से मुरझाया हुआ था, उसे देखकर अभ्रमयी राधा का स्मरण हो आना कोई आश्चर्य की बात नहीं। अतः जब भगवान श्रीकृष्णः—

“पाई बहै कंज में सुगंध राधिका कौ मंजु,

ध्याए कदलीबन मतंग लौ मताए हैं।”

[‡]कामशास्त्र के अनुसार जिस स्त्री के शरीर से कमल जैसी गन्ध आती है उसे पद्मनी कहते हैं।

जब उनके प्रिय सखा उद्धव ने उनकी यह दशा देखी और सब वृत्तान्त सुनना चाहा, तब बड़ी कठिनता से भगवान बोले:—

“कहा कहैं ऊधौ सौं कहे हूँ तौ कहाँ लौं कहैं,
कैसे कहैं कहैं पुनि कौन सी उठानि तै ।”

भगवान अपनी व्यथा कथा के कहने का प्रयत्न कर ही रहे थे:—

तों लौं अधिकारि तै उमगि कंठ आई मिचि,
नीर ह्वै बहन लागि बात आँखियानी तैं ।”

आँसुओं ने राजे दिल खोल दिया। हृदय के छिपे हुए रहस्य का ढोल पीट दिया। उद्धव जान गये भगवान के हृदय की पीड़ा को। वे समझाने लगे, उन्होंने अपना ब्रह्मज्ञान छाँटना शुरू कर दिया। बोले:—

“पाचौं तत्व माँहि एक सत्व ही की सत्ता सत्य,
याहि तत्वज्ञान कौ महत्व श्रुति गायौ है ।
तुमतौ बिबेक रत्नाकर कहौ क्यों पुनि
भेद पंच भौतिक के रूप में रचायौ है ।
गोपिनी मैं, आप मैं बियोग और संयोग हूँ मैं,
एकै भाव चाहिए सचोप ठहरायौ है ।
आपुहि सौं आपको मिलाप और विछोह कहा,
मोह यह मिथ्या सुख-दुःख सब ठायौ है ॥

गर्व प्रहारी भगवान उद्धव के इस थोथे ज्ञान को कैसे सुन सकते थे। अतः उन्होंने उद्धव से कहा:—

“आवो एक बार धारि गोकुल गली की धूरि,
तब इंहि नीति की प्रतीति धरि लैं हैं हम ।

मन सौ करेजे सौं स्रवन सिर आँखिन सौं,

उधव तिहारी सीख भीख करि लैहैं हम ॥

उद्धव तथा कृष्ण के सम्वाद में कृष्ण के ब्रजभूमि के प्रति अनुराग की बड़ी सुन्दर व्यंजना उनके कथनों द्वारा लेखक ने करायी है। उदाहरणार्थ देखिये:—

“कहत गुपाल माल मंजु मनि पुंजनि की,

गुंजनि की माल की मिसाल छबि छावै ना ।

कहै रतनाकर रतन मैं किरीट अच्छ,

मोर पच्छ अच्छ लच्छ अंसहु सुभावै ना ॥

जसुमति मैया की मलैया अरु माखन कौ,

कामधेनु गोरस हूं गूढ़ गुन पावै ना ।

गोकुल की रज के कनूँका औ तिनूका सम,

सम्पति त्रिलोक की विलोकन मैं आवै ना ।”

विशेष पर्वों तथा त्यौहारों पर परदेश गये हुए संबन्धियों की याद हृदय को सालने लगती है। मन में यह भावना जागृत होती है कि यदि इस अवसर पर हमारा प्रियजन यहाँ होता तो आनन्द दुगुना हो जाता। उद्धवशतक की गोपियों के इस कथन में यह जीवन की यथार्थता कितनी सुन्दरता के साथ आयी है, जरा देखिये:—

“आवत दिवारी बिलखाइ ब्रजवारी कहैं,

अबकै हमारे गाँव गोधन पूजैहैं कौ ।

कहै रतनाकर विविध पकवान चाहि,

चाह सौ सराहि चख चंचल चलैहैं कौ ।

निपट निहोरी जोरि हाथ निज साथ ऊधौ,
 दमकति दिव्य दीपमालिका दिखैहै को ।
 कूबरी के कूबर तैं उबरि न पावैं कान्ह,
 इन्द्र कोप लोपक गुबर्धन उठैहै को ॥

अपने प्रियजन जब अपना काम निकाल कर किनारा काटने लगते हैं तो हमें अपार दुःख होता है। अपना काम साधकर यदि वही हमारा हृदय सर्वस्व, व्यंगोक्तियों अथवा अपने उल्टे सीधे वाक्यों द्वारा हृदयों के घावों पर नमक छिड़कता हो तो क्या हम रो न उठेंगे, बिलबिला न उठेंगे ? गोपियों के इस कथन में कविवर रत्नाकर ने जीवन के इसी सत्य का मार्मिक चित्रण किया है। गोपियां कहती हैं :—

“हाल कहा ब्रूकत बिहाल परि बाल सबै”

ऐसी दशामें—

“बसि दिन द्वैक देखि दगन सिधाइयौ”

क्योंकि:—

“रोग यह कठिन न ऊधौ कहिबै के जोग,

सूधौ सो सन्देस याहि तू न ठहराइयो ।

ऐसी दशा में यदि:—

“औसर मिलै और सरताज कछु पुछहि तौ,

कहियो कछु न दसा देखि सो दिखाइयो ।”

फिर क्या करना:—

“आह के कराहि नैन नीर अव गाहि कछु,

कहिबे कौ चाहि हिचकी लै रहि जाइयौ ।”

आखिर यह सब नाटक क्यों रचा जा रहा है, क्योंकि गोपियाँ जानती हैं, यदि ब्रजवासियों की दयनीय दशा का

वर्णन उद्धव ने श्रीकृष्ण से कर दिया तो:—

“आँसू भरि ऐंहे औ उदास मुख ह्वै है हाय,
ब्रज दुख त्रास की न ताते सांस लीजियौ ।”

ऐसी दशा में यही अच्छा है कि:—

“नाम को बताई औ जताई गाम ऊधौ बस,
स्याम सौं हमारी राम राम कह दीजियौ ।”

“स्याम सौं हमारी राम राम कह दीजियौ” में जो दिल का दर्द छिपा है, हृदय की पीड़ा निहित है, उसे कोई सहृदय विवेकी ही जान सकता है। यह सब कहने के बाद एक बात गोपियों ने और कही, जो जरा चुभती हुई थी; मीठी थी लेकिन ऊपर से, भीतर से कड़वी थी:—

“भली हैं बुरी हैं औ सलज निलज हूं हैं,
जो कहो सो हैं पर परिचारिका तिहारी हैं ।”

इस प्रकार उद्धव शतक के गोपी संवाद में कहीं कहीं रत्नाकर जी ने एक प्रकार की नाटकीयता ला दी है।

स्त्रियों को अपने प्रियतम से उतना गिला-शिकवा नहीं होता जितना उन्हें अपनी शक्ति से होता है, क्योंकि वे जानती हैं कि सपत्नी ही उनके तथा उनके जीवन सर्वस्व के बीच दीवार का काम कर रही है। गोपियों की यह उक्ति नारी जीवन की इस वास्तविकता का सुन्दरतम उदाहरण कही जा सकती है:—

“रसिक सिरोमनी को नाम बदनाम करौ, ✓

मेरे जान ऊधौ कूर कूबरी पठायौ है ।

गोपियों के कथन में कहीं २ लाक्षणिकता खूब आयी है। अलंकारिक सौन्दर्य ने उसे और भी हृदयग्राही बना दिया है। इसका एक उदाहरण यहां पर्याप्त होगा :—

‘होते कहूँ क्रूर तौ न जाने करते धौँ कहा,

ए तो क्रूर करम अक्रूर हूँ कमायौ जो ।”

× × × ×

“ले गयो अक्रूर क्रूर तव सुख मूर कान

आये तुम आज प्रान ब्याज उगहाने कौ ।”

अक्रूर ने कृष्ण को लेजाकर गोपियों को विरहानल में छोड़ दिया और अब उद्धव उनका श्राद्ध करने के लिए आया है। यही बात लाक्षणिक ढंग से गोपियों द्वारा कहलायी गयी है।

इसी प्रकार इन पंक्तियों में :—

“या ही सोच माही होती दूबरी से कहा

कूबरी हू न होती न पतोहू नन्द राय की ।”

कितना चुभता हुआ व्यंग है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। चन्द्रमुखी राधा के प्रणय को छोड़कर कुब्जा को स्नेह पास में बाँधने वाले कृष्ण की गुण ग्राहकता की कितनी सुन्दर दाद दी गयी है।

कवि शब्द चित्रों को उतारने में बहुत सफल हुआ है। उद्धव का वृज से विदा होते समय का चित्र कितना करुण है, देखिये :—

धाईँ जित-तित तैं बिदाई-हेत ऊधव की

गोपी भरीं आरती सँम्हारति न साँसुरी ।

कहै रतनाकर मयूर-पच्छ कोऊ लिए

कोऊ गुंज-अंजली उमाहे प्रेम-आँसुरी ॥

भाव-भरी कोऊ लिए रुचिर सजाव दही

कोऊ मही मंजु दाबि दलकति पाँसुरी ।

पीत पट नंद जसुमति नवनीत नयौ

कीरती-कुमारी सुरबारी दई बाँसुरी ॥

इसी प्रकार एक दूसरा चित्र देखिये । उद्धव ब्रज से बिदा होकर द्वारिका लौट रहे हैं, उस समय का चित्र देखिये:—

“प्रेम-मद-झाके पग परत कहां के कहां
थाके अंग नैननि सिथिलता सुहाई है ।
कहै रतनाकर यौ आवत चकात ऊधौ
मानौ सुधियात कोऊ भावना भुलाई है ॥
धारत धरा पै ना उदार अति आदर सौं
सारत बंहोलिनि जो आँस-अधिकाई है ।
एक कर राजै नवनीत जसुदा कौ दियौ
एक कर बंसी बर राधिका पठाई है ॥”

उद्धव गोपी सम्वाद का उद्देश्य था ज्ञान पर भक्ति की विजय दिखाना । उद्धव-शतक में भी गोपियों द्वारा परास्त होने पर ज्ञान के अभिमान में चूर रहने वाले उद्धव का सर्व गर्व खर्व हो गया । इसीलिये उन्हें गर्व प्रहारी भगवान से कहना पड़ा :—

“जैहैं व्यथा बिषम बिलाइ तुम्हैं देखत हीं
तातैं कही मेरी कहूँ भूँठि ठहरावौ ना ।
कहै रतनाकर न याहि भय भाषैं भूरि
याही कहैं जावौ बस बिलंब लगावौ ना ॥
एतौ और करत निवेदन स बेदन हैं
ताकौ कछु विलग उदार उर ल्यावौ ना ।
तब हम जानैं तुम धीरज-धुरीन जब
एक बार ऊधौ बनि जाइ पुनि जावौ ना ॥

कृष्ण साहित्य में ब्रज भूमि के प्रति प्रेम की भावना की सुन्दर अभिव्यञ्जना सर्वत्र मिलती है । उद्धव-शतक में भी इस प्रेम को व्यञ्जित करने वाले कितने ही कवित्त मिलते हैं । उद्धव की भगवान के प्रति यह उक्ति इसका सर्वोत्तम उदाहरण है :

झावते कुटीर कहुं रम्य जमुना के तीर
 गौन रौन-रेती सौं कदापि करते नहीं ।
 कहै रतनाकर बिहाई प्रेम-गाथा गूढ़
 सौन रसना में रस और भरते नहीं ॥
 गोपी ग्वाल बालनि के उमड़त आँसू देखि
 लेखि प्रलयागम हूं नैकू डरते नहीं ।
 हो तौ चित चाव जौ न रावरे चितावन कौ
 तजि ब्रज-गांव ह्रतै पावँ धरते नहीं ॥ ❀

देखिये उपर्युक्त कवित्त में ब्रजभूमि प्रेम की कैसी भावमयी
 व्यञ्जना रत्नाकर जी ने उद्धव के मुख से करायी है:—

इसी प्रकार उद्धव से भगवान श्रीकृष्ण ने भी एक बार
 कहा था :—

मोर के पखौवनि कौ मुकुट छबीलौ छोरी
 क्रीट मनि-मंडित धराइ करिहैं कहा ।
 कहै रतनाकर त्यों माखन-सनेही बिनु
 षट-रस व्यंजन चबाइ करिहैं कहा ॥
 गोपी ग्वाल-बालनि कौं भोंकि बिरहानल मैं
 हरि सुर-वृन्द की बलाइ करिहैं कहा ।
 प्यारो नाम गोविंद गुपाल कौ बिहाइ हाय
 ठाकुर त्रिलोक के कहाइ करिहैं कहा ॥

❀ सूर ने भी ब्रज के प्रति इन शब्दों में अपनी भक्ति भावना
 प्रकट की है, भगवान उद्धव प्रति कहते हैं —

“ऊधो मोहि ब्रज बिसरत नाहि,
 हंस सुता की सुन्दर गगरी और शरीर की छाहि

गंगावतरण

गङ्गावतरण में महाकाव्य के लक्षणः—

गङ्गावतरण रत्नाकर जी का महाकाव्य है । इसके मङ्गलाचरण में छप्पय तथा शेष समस्त काव्य के प्रत्येक सर्ग में रोला तथा सर्गान्त में एक उल्लाहा का प्रयोग किया गया है । गङ्गावतरण में कुल मिलाकर ५७० पद्य हैं जिनका व्यौरा इस प्रकार हैः—

मङ्गलाचरण	३ छप्पय	
प्रथम सर्ग	३७	रोला अन्त में एक उल्लाहा ।
द्वितीय सर्ग	३६	”
तृतीय सर्ग	३४	”
चतुर्थ सर्ग	५२	”
पञ्चम सर्ग	५१	”
षष्ठ ”	४०	”
सप्तम ”	४१	”
अष्टम सर्ग	४७	”
नवम सर्ग	३६	”
दशम ”	४२	”

एकादश सर्ग	४७	रोला अन्त में एक उल्लाहा
द्वादश सर्ग	४०	”
तृयोदश सर्ग	४४	”
	४५६	+ १३ = ४६९

काव्य की समाप्ति पर एक दोहा है। समाप्ति की तिथि का सूचक एक दोहा मिलाकर गङ्गावतरण की छन्दसंख्या ४७० हो जाती है।

गङ्गावतरण में वे सब लक्षण मिलते हैं जो एक सफल महाकाव्य में होने चाहिए। साहित्य दर्पण में कविराज विश्वनाथ ने महाकाव्य के ये लक्षण बताये हैं:—

“जिसमें सर्गों का निबन्धन हो वह महाकाव्य कहलाता है। इसमें एक देवता सद्दश क्षत्रिय—जिसमें धीरोदात्तत्वादि गुण हों, नायक होता है। कहीं एक वंश के सत्कुलीन अनेक भूप भी नायक होते हैं। शृङ्गार, वीर और शान्त में से कोई एक रस अङ्गी होता है। अन्य रस गौण होते हैं। सब नाटक-सन्धियाँ रहती हैं। कथा ऐतिहासिक या लोक में प्रसिद्ध सज्जन सम्बन्धिनी होती है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस चतुर्वर्ग में से एक उसका फल होता है। आरम्भ में आशीर्वाद, नमस्कार या वर्य वस्तु का निर्देश होता है। कहीं खलों की निन्दा तथा सज्जनों का गुण-वर्णन होता है। इसमें न बहुत छोटे न बहुत बड़े आठ से अधिक सर्ग होते हैं। उनमें प्रत्येक में एक ही छन्द होता है, किन्तु अन्तिम पद्य (सर्ग का) भिन्न छन्द का होता है। कहीं कहीं सर्ग में अनेक छन्द भी मिलते हैं। सर्ग के अन्त में अगली कथा की सूचना भी होनी चाहिए। इसमें संध्या, सूर्य,

चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया (शिकार), पर्वत, ऋतु (झरों), बन, समुद्र, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नरक, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथा सम्भव सांगोपांग वर्णन होना चाहिए। इसका नाम कवि के नाम से (जैसे माघ) या चरित्र के नाम से (जैसे कुमारसम्भव) अथवा चरित्रनायक के नाम से (जैसे रघुवंश) होना चाहिए। कहीं इसके अतिरिक्त भी नाम होता है—जैसे भट्टि। सर्ग की वर्णनीय कथा से सर्ग का नाम रखा जाता है। —सन्ध्यङ्गा नीति— सन्धियों के अङ्ग यहाँ यथासम्भव रखने चाहियें। अवसाने—यहाँ बहुवचन की विवक्षा नहीं है—यदि एक या दो भिन्नवृत्त हों तो भी कोई हर्ज नहीं। जलक्रीड़ा-मधुपानादिक सांगोपांग होने चाहियें।”

—सर्वतन्त्र स्वतन्त्र विद्यावाचस्पति पं० शालग्राम शास्त्री
कृत विमला टीका से

जब हम उपर्युक्त लक्षणों को सामने रखकर गङ्गावतरण को आलोचना की कसौटी पर कस कर देखते हैं तो गङ्गावतरण इस परीक्षा में खरा उतरता है। गङ्गावतरण के नायक हैं पुण्यताया भगवती भगीरथो को धराधाम पर लाने वाले भगीरथ। भगीरथ सद्वंश जात क्षत्रीय थे। उनमें वे सब गुण विद्यमान हैं जो एक महाकाव्य के नायक में होने चाहिये। वे धीरोदात्त नायक हैं। साहित्य-दर्पण में धीरोदात्त नायक के जो लक्षण बताये गये हैं वे सब भगीरथ में विद्यमान हैं। दर्पणकार के मतानुसार धीरोदात्त नायक में इन गुणों का होना आवश्यक है:—

“अविकथनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः ।

स्थेयान्निगूढमानो धीरदात्तो दृढव्रतः कथितः ॥”

अर्थात् “अपनी प्रशंसा न करने वाला, क्षमायुक्त, अति गम्भीर स्वभाव वाला, शोकादि से अपने स्वभाव को नहीं बदलने वाला, स्थिर प्रकृति, विनय से प्रच्छन्न गर्व रखने वाला, दृढव्रत, अपनी बात का पक्का और आन का पूरा पुरुष ‘धीरोदात्त’ कहलाता है ।”

भगीरथ के चरित्र में ये सब गुण विद्यमान हैं। वे सद्वंश क्षत्री होने के साथ ही साथ अपनी आन पर मर मिटने वाले पक्के भी हैं। कविवर रत्नाकर ने इसीलिये अनेक पवित्र चरित्र पर प्रकाश डालते हुए ये पंक्तियाँ लिखी हैं:—

“दृढ-व्रत धर्म धुरीन दीन दुःख-दर्द निवारी ।

ईस भक्त द्विज-पितर-साधु-गो-द्विज हितकारी ॥

× × ×

जाकौ प्रखर प्रताप ताप सो अरि उर तावत ।

हंस-वंश-सुम-सुजस-कलानिधि-द्युति दमकावत ॥

सम्पति मानि सुहाग चलति जापै उमगानी ।

कहत कामना कछुक सिद्धि आवति अगवानी ॥”

—गंगावतरण १५ सर्ग ४१।४६

भागीरथ के चरित्र में कवि ने लोककल्याण के मंगलमय दर्शन भी कराये हैं। भगवती भगीरथी ने जब भागीरथ से वरदान मांगने के लिये कहा तो उन्होंने गङ्गा महारानो से यही वरदान मांगा:—

“पापी पतित स्वजाति-त्यक्त सौ सौ पीड़ितिके ।

धर्म-विरोधी कर्मभ्रष्ट च्युत स्तुति-सीढ़िनिके ॥

तव जल श्रद्धा सहित न्हाइ हरि नाम उचारत ।

है सब तन-मन शुद्ध होहिं भारत के भारत ॥”

—गंगावतरण १३वां सर्ग १५

अब तनिक साहित्य दर्पण के उपर्युक्त लक्षणों से भगीरथ के चरित्रचित्रण का मिलान काजिये । क्या उनमें वही गुण है जिनका उल्लेख दर्पणकार ने किया है ? यदि है तो फिर उन्हें धीरोदात्त नायक मानने में संकोच कैसा ? दर्पणकार के मतानुसार महाकाव्य में कम से कम दस सर्ग होने चाहियें । परन्तु गंगावतरण में त्रयोदश सर्ग हैं । महाकाव्य के लक्षणों को सामने रखकर कवि ने सर्गान्त में छन्द भी बदले हैं । ये छन्द अगली कथा के सूचक हैं । सभी रस प्रायः इसमें तीव्रगति से प्रवाहित हो रहे हैं । कथा भी इतिहास पुराण प्रसिद्ध है ।

गङ्गावतरण का कथानक कहाँ से लिया गया ?

गंगावतरण की कथा वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड (३६ से ४४ सर्ग तक) से ली गयी है । गङ्गावतरण के चतुर्थ सर्ग को छोड़कर शेष सर्गों की कथा का ढाँचा इन्हीं सर्गों से तैयार किया गया है । चतुर्थ सर्ग की कथा ब्रह्मवैवर्त पुराण से ली गयी है । गङ्गावतरण के कुछ पद्य तो वाल्मीकि रामायण के अनुवाद से जान पड़ते हैं । उदाहरणार्थ देखिये:—

“एका जनयिता तात पुत्रं दंशकरं तव ।

षष्टि पुत्र सहस्राणि अपरा जनयिष्यति ॥—‘वाल्मीकि रामायण’

लहै केसनीपूत एक कुल-संतति कारी ।

साठ सहस सुत सुमति बिपुल-बल-बिषुमधारी ॥—‘गङ्गावतरण’

× × ×

सुमतिस्तु नर व्याघ्र गर्भतुवं व्यजायत ।

षष्टि पुत्र सहस्राणि तु बभेदाद्भिः सृता ॥

—बाल्मीकि रामायण

सुमति सलोनी जनी एक तूँबी अति अद्भुत ।

निकसे जासौं साठ सहस लघुबीज सरिस सुत ॥

—गंगावतरण

× × ×

घृतपुर्णेषु कुम्भेषु धाव्यस्तान्समवर्धयन् ।

कालेन महता सर्वे यौवनं प्रतिपेदिरे ॥ ‘बाल्मीकि रामायण’

दीर्घ मृगघट घालिते धाड़ बढ़ाए ।

समय-सङ्ग सब अङ्ग रूप जो बल अधिकाए ॥ ‘गङ्गावतरण’

कवि जो अध्ययन करता है उसकी छाप उसके विचारों पर अप्रत्यक्ष रूप से पड़ ही जाती है। वह स्वयं ही नहीं जानता कि जो-कुछ मैं लिख रहा हूँ वह किसी से उधार मांगे हुए विचारों पर आश्रित है, वह मेरी अपनी पूँजी नहीं। रत्नाकर जी के कितने ही पद गङ्गावतरण में ऐसे भी आये हैं जिन पर अप्रत्यक्षरूप से उन कवियों की छाप पड़ गयी है जिनका अध्ययन उन्होंने कभी विद्यार्थी जीवन में किया होगा। लाडें टेनीसन की प्रसिद्ध कविता:—

“Home they brought her warrior dead,”

उन्होंने कभी अपने बचपन में पढ़ी होगी, परन्तु उसके संस्कार उनके मस्तिष्क में इस प्रकार बने रहे कि उनकी लेखनी से नये ढङ्ग से संस्कृत होकर निकल ही पड़े। जब सगर को विदित

हुआ कि उनके साठ हजार पुत्र कपिल की कोपानल में पड़कर भस्म हो गये तो उन्हें अपार दुख हुआ। इतना कि वे रो तक न सके। अब तनिक रत्नाकर की इन पंक्तियों:—

“जौ अति उबलत सोक-सलिल दग-पथ नहिं पै है ।
भूरि भाप सौं पूरि तुरत तौ घट फटि जै है ॥”

के साथ टेनीसन की इन पंक्तियों:—

Home They brought her warrior dead;
She nor Swoon'd, nor utter'd cry :
All her maidens, watching, said.
‘She must weep or She will die.’”

के साथ तुलना कीजिये। अब जरा रत्नाकर की ये पंक्तियां भी देखिये:—

“मनुष्य-सुभाव-प्रभाव बहुरि गुनि-मुनि बिज्ञानी ।
अति अचूक उपयुक्त जुक्ति ठानी हित सानी ॥
अंसुमान का पकरि पानि नृप अङ्ग लगायौ ।
करुना-क्रन्दन करत कुंवर कम्पत लपटायौ ॥
लहि सन्निधि सम सीलपूत के धरकत हिय की ।
अनुकम्पित कछु भई सिरा नरपति जग-प्रिय की ॥
ज्यों कोउ तन्त्री बाज उठत कछु गाजि गमक सौं ।
सम-सुर सात्म्य सपीय-वाद की नाद-धमक सौं ॥”

अब रत्नाकर जी की उपर्युक्त पंक्तियों की तुलना टेनीसन की निम्न पंक्तियों से कीजिये:—

Rose a nurse of ninety years,
 Set his child upon her knee—
 Like Summer tempest came her tears—
 “Sweet my child, I live for thee.”

गंगावतरण में कविवर रत्नाकर के कितने ही पद्य ऐसे हैं जिनपर बिहारी की स्पष्ट छाप दीखती है। इनका उल्लेख पिछले परिच्छेदों में किया ही जा चुका है।

गङ्गावतरण का कथा-प्रवाह:—

कथा प्रवाह में पौराणिकता का रंग भी खूब है। अष्टम सर्ग तक प्रवाह में तीव्रता है। शेष पांच सर्गों में प्रवाह कुछ मन्द पड़ गया है। जान पड़ता है कि बँधी हुई परम्परा के अनुसार दस से अधिक सर्गों में काव्य को समाप्त करने की धुन में कवि को यह व्यर्थ का बखेड़ा खड़ा करना पड़ा। आठ सर्गों के बाद का वर्णन तो भौगोलिक वर्णन के समान नीरस और शुष्क जान पड़ता है। कहीं कहीं तो गंगातटवर्ती नगरों के नाम ही गिनवा दिये हैं। कथा में पौराणिकता लाने के लिये गंगा जी का महात्म्य भी गरुड़ द्वारा अंशुमान को सुनवाया गया है। गरुड़ द्वारा यह सुनने पर कि सगर-सुतों का उद्धार करने के लिये विष्णुपदी गंगा का धराधाम पर आना नितान्त आवश्यक है, भगीरथ के हृदय में पुण्यतोया के महात्म्य को जानने की इच्छा का सजग होना कोई बड़ी बात नहीं। क्योंकि गरुड़ ने गंगा की महिमा का वर्णन ही इस प्रकार किया था। गरुड़ ने कहा था:—

“धर्म-धीर जो बीर इन्हें तारन मन ठानै ।
 सो स्वम साधि अभङ्ग गङ्ग इहि आश्रम आनै ॥
 पर धार सो धार तुरत सिगरे तरि जैहैं ।
 कपिल-साप को दाप पाप के ताप नमैहैं ॥”

इन जिज्ञासावर्धक शब्दों को सुनकर अंशुमान का यह कहना:—

“स्रद्धा बर्द्धा अपार अपर वृत्तान्त सुनन की ।
 तव आनन सौं चुवत चारु सुभ सुमन चुनन की ॥”

स्वाभाविक ही था । श्रद्धालु की जिज्ञासा का समाधान करना गरुड़ के लिये अनिवार्य हो गया । अब वे चुप न रह सके । वे गंगा महात्म्य की कथा सुनाने लगे । इस सम्बन्ध में कवि कहता है:—

हरि जानहु हिय हुलसि कहन श्रद्धा सरमानी ।
 इमि मुख-मग ह्वै अति उदार बानी उमगानी ॥”

गंगा महात्म्य की कथा वैवत पुराण से ली गयी है । तथा शेष सब कथा ली गयी है—वाल्मीकीय रामायण से । दोनों कथाओं को मिलाने के लिये कवि ने अंशुमान तथा गरुड़-संवाद की सुन्दर कल्पना की है ।

गङ्गावतरण में चरित्र-चित्रण:—

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से गङ्गावतरण के कवि को बहुत सफलता मिली है । गङ्गावतरण में भगीरथ काव्य के नायक हैं । क्योंकि गङ्गावतरण के उद्देश्य की पूर्ति उन्हीं के द्वारा होती है । काव्य में नायक वही हो सकता है जो अन्त में किसी फल की प्राप्ति करता है । गंगा को धराधाम पर ला सकने

का श्रेय भगीरथ को ही मिलता है। अतः भगीरथ को ही हमें काव्य का नायक स्वीकार करना पड़ेगा। भगीरथ के चरित्र में वे सब विशेषतायें हैं जो एक काव्य के नायक में होनी चाहिए। इन सबका उल्लेख ऊपर किया ही जा चुका है। भगीरथ दूरदर्शी थे। उनकी दूरदर्शिता का पता हमें उनके इन शब्दों से लगता है:—

“सोच्यौ जौ यह बयस वृथा ऐसेहि चलि जै है ।

तो उतरत दिन माहिं कठिन तप पार न पै है ॥

अंसुमान इहिं हेत कलुष पायौ करि नाहिं ।

यातैं उचित बिलम्ब नाहिं शुभ कारज माहिं ॥”

—गङ्गावतरण १२ सर्ग ४६

शुभकार्य में विलम्ब नहीं करना चाहिए, न जाने कल क्या हो। इसीलिये भगीरथ ने “राजि मन्त्रिन सिर धारयौ” और आप मन्त्रियों को यह समझाकर:—

“अब हम तपहित जात गङ्ग जासौं महि आवै ।

होइ मिलन पुनि आइ ईस जौ आस पुरावै ॥”

यदि भगवान ने इच्छा पूरी की तो फिर मिलन होगा। भगीरथ के इन शब्दों से उनके दृढ़ संकल्प होने का पता चलता है। तभी तो उन्होंने “बिते वर्ष अनेक टेक पै नेक न टारी।” उनकी कठोर तपस्या से चतुर चतुरानन का आसन हिल उठा। वे प्रकट हुए। भगीरथ से उन्होंने वर मांगने को कहा, पर उन्होंने मांगा क्या? उन्होंने मांगा:—

“असन बसन बर नाम धाम भव-विभव न चाहैं ।

सुर-पुर सुख विज्ञान मुक्ति हूं पै न उमाहैं ॥

अति उद्गार करतार जदपि तुम सरबर दानी ।
हम लघु जाचक चहत एक चुल्लू भर प्रानी ॥”

× × ×

ताहिं सौ तपन्ताप दूरि करि अङ्ग जुड़ैहैं ।
ताहिं सौ सब साप दाप पितरनि के जैहैं ॥
ताहि सौं जग सकल महा मुद-मङ्गल छैहैं ।
ताहि सौं सुख पाइ लाख अभिलाष पुरैहैं ॥

—गङ्गावतरण षष्ठ सर्ग, १८।१६

भगवती विष्णुपदी धराधाम पर अवतरित होंगी, तब मेरे पूर्वजों का उद्धार होगा । केवल यही एकमात्र कामना तपस्वी भगीरथ के हृदय में थी और उन्हें चाहिए ही क्या था ? चतुर चतुरानन ने वचन तो दे दिया गङ्गा को प्रदान करने का, पर साथ ही यह भी समझा दिया:—

धमकि धूम सौं धाड़ धसैं जबहि ब्रह्मद्रव ।
उथल-पुथल होहि रसातल मचहि उपद्रव ॥
जगत जलाहल होहि कुलाहल त्रिभुवन ब्याधै ।
हूँ सनद्ध कटिबद्ध कौन धिरता फिरि थापि ॥

× × ×

तातै कहत उपाय एक अतिसय हितकारी ।
आराधौ तुम आसुतोष शंकर त्रिपुरारी ॥
सो सब भौंति समर्थ अर्थ-दायक चित चाहै ।
करत न नैक विचार चार फल देत उमाहै ॥

—गङ्गावतरण षष्ठ सर्ग २१।२२

वरदान तो मिला किन्तु एक बखेड़ा खड़ा हो गया। कठोर तपस्या द्वारा भगवान् भूतनाथ को प्रसन्न करो, तब कहीं जाकर विष्णुपदी धराधाम पर आयें। इतने पर भी भगीरथ अपने पथ से विचलित नहीं हुए। घोर तपस्या प्रारम्भ कर दी उन्होंने। ऐसी कठोर तपस्या कि आसुतोप का आसन हिल गया। वे:—

“आनुर चले उमङ्ग भरे भङ्गहु नहि छानी।

कृपाकानि वरदान देन-हित हिय हुलसानी ॥”

—गङ्गावतरण पष्ठ सर्ग २६

भगवान् भूतनाथ ने भक्त की मुन ली। और गंगा को अपने सिर पर धारण करने की स्वीकृति दी। गंगा धराधाम पर प्रकट हुई; पर भगीरथ का मार्ग इतने से ही निष्कण्टक नहीं हुआ; एक विपत्ति और आ गयी। शिवशंकर पुण्यसलिला के स्पर्श से लुभा गये। उन्होंने:—

“दियौ सीस पर ठान वाम करि कै मनमानी।”

पुण्यतोया के सुखद स्पर्श से आसुतोप यह भूल गये कि उन्होंने भक्त को भी वरदान दिया है। इसीलिये:—

“इहि विधि आनन्द में अनेक बीते रवत्सर।”

अब बेचारा भक्त भगीरथ करें तो क्या करें। फिर करनी पड़ी तपस्या बेचारे को, तब कहीं समस्या हल हुई।

गङ्गावतरण में सगर का चरित्र भी एक आन पर मर-मिटने वाले नृपति के रूप में चित्रित हुआ। उसके ये शब्द:—

“सेनप होहि सनद्ध सकल-जग जीत न हारे।

हम चलि देखैं आप कौन कौं प्रान न प्यारे ॥

काकौ सिर धर त्यागि धरा पर परन चहत है ।
को जम-गाल कराल भाल निज भरन चहत है ॥”

—गङ्गावतरण १म सर्ग ३३

कितने वीरत्व-व्यञ्जक है । सच्चा क्षत्री ही ऐसे वीरत्व तथा साहसपूर्ण शब्दों को मुख से निकाल सकता है ।

सगर पुत्रों का चित्रण कवि ने हर वात में जल्दबाजी कर जाने वाले नवयुवकों के रूप में किया है । कपिल आश्रम में अश्व को चरते हुए देखकर महर्षि को बिना सोचे समझे चोर समझ बैठना तथा उन्हें अपशब्द कहना उनकी अदूरदर्शिता का ही परिचायक समझा जायगा । एक ऋषि को अपमानित करते हुए उन अपरिपक्व बुद्धिवाले अल्हड़ राजकुमारों ने यहाँ तक कह डाला:—

“रे दुरमति दुर्भाग्य दुष्ट दुर्वृत दुरासय ।
कायर क्रूर कपूत कपटरत कुटिल कलासय ॥
हय चुराई पाताल पैठि बैठ्यौ बक ध्यानी ।
सगर-सुतनि की पै महान महिमा नहीं जानी ॥”

(गङ्गावतरण २तीय सर्ग ३७)

इसी प्रकार अंशुमान का चरित्र चित्र भी कवि ने बहुत सुन्दरता के साथ चित्रित किया । वह एक विनयी तथा विनम्र स्वभाव का राजकुमार है । कपिल के कोपानल में सगर-सुतों के भस्म हो जाने पर उनके उद्धार के लिये वह राताँदन चिन्तित रहता है । इस प्रकार उसके अपने पूर्वजों के उद्धार के लिये चिन्तित रहना उसके चरित्र की चारुता का द्योतक है । कवि ने उसकी इस अवस्था का चारु-चरित्र इन शब्दों में अंकित किया है:—

“निसदिन करत बिचार चारु सुरसरि ल्यावन कौ ।
 पितरनि तारि अपार द्वेम सौं छित्तिछावन कौ ॥
 पै साधन-उपयुक्त-जुक्ति कोउ चित चढ़ति ना ।
 सोई चिन्ता की सदा जुभति नटसाल कढ़ति ना ॥”

—गङ्गावतरण १२ सर्ग ३०

वास्तव में अंशुमान ही पुण्यतोया को धराधाम पर लाने की पृष्ठभूमि तैयार करता है। उसने अपने वंशजों के लिये आदेश कर दिया था कि जबतक कोई पुण्यतोया को धराधाम पर नहीं लाये तबतक वह अपने को सूर्यवंशी कहने का मिथ्या अभिमान न करे। उसके ये शब्द हमारे इस कथन के साक्षी हैं:—

“जो इंहि आसन होई राज-आसन-अधिकारी ।
 सुरसरि-आनन-हेत करै कानन तप भारी ॥
 जब लौं कोउ पतंग-बंस महि गंग न आनै ।
 तब लौ सलभ पतंग अर्थ इंहि कुलहित मानै ॥”

—गंगावतरण १२ सर्ग ४२

अंशुमान द्वारा ही सगर को कपिल के कोपानल में अपने पुत्रों के भस्म होने का पता चला था। यहीं से गङ्गा को धराधाम पर लाने की भूमिका प्रारम्भ हुई थी। ऋषि ने इसी बात को बहुत सुन्दर ढङ्ग के साथ इस प्रकार कहा है:—

“हैं पत्ताल लौ नीच भानुकुल-सुकृत-सदन की ।
 श्री उतारि तहँ धारि सकल वृत्रारि-बदन की ॥
 जड़ जमाइ भक्तिव्य भगीरथ-जस-बर बट की ।
 सोधि खानि गम्भीर भूति लै पुण्य पुरट की ॥”

—गङ्गावतरण १२ सर्ग ३

आसुतोष भगवान् शङ्कर का चित्रण भी कवि ने बहुत सुन्दर किया है। भक्त को बरदान देने की उमङ्ग में भोलानाथ “आतुर चले उमङ्ग भरे भङ्गहु नहिं छानी।” देखिये भक्त-वत्सलता का कितना सुन्दर चित्र है यह। इसे देखते ही मुख से निकल पड़ता है कि आसुतोष हैं सचमुच अगद दानी।

गङ्गावतरण की कथा बहुत सुन्दर ढङ्ग से कही गयी है। भगवान् भूतनाथ शीलाखण्ड पर खड़े हुए हैं और गङ्गागम की प्रतीक्षा कर रहे हैं। ब्रह्मा के कमण्डलु से पुण्यतोया नीचे छुट पड़ी है, प्रलयङ्कर शङ्कर को सामने देखकर:—

“गंग कह्यौ उर भरि उमंग तौ गंग सही मैं।

निज तरंग-बल जौ हर-गिरि हर-संग महि मैं ॥

लै-सबेग-बिक्रम पाताल पुरि तुरत सिधाऊं।

ब्रह्मलोक कौं बहुरि पलटि कंदुक इव आऊं ॥

—गंगावतरण ७म सर्ग ८

भोले बाबा गर्वप्रहारी इसीलिए:—

“सिव सुजान यह जानि तानि भौंहनि मन भाषे।

बाढ़ी-गंग-उमंग-भंग पर उर अभिलाषे ॥”

—गंगावतरण सप्तम सर्ग १

धीरे धीरे त्रिपथगाह आकाश मार्ग से धराधाम पर उतरने लगीं, परन्तु:—

“भई थकित छुबि छुकित हेरि-हर-रूप मनोहर।

हूँ आनहि के प्रान रहे तन धरे धरोहर ॥

भयौ कोप कौ लोप चोप औरै उमगाई।

चित चिकनाई चढ़ी कढ़ी सब रोष-रुखाई ॥”

—गंगावतरण ७म सर्ग ३६

इसीलिए तो:—

“छोभ-छलक ह्वै गई प्रेम की पुलक अंग मैं ।

थहरन के दरि ढंग परे उठरति तरंग मैं ॥

भयौ बेग उद्वेग पैग छाती पर धरकी ।

हरहरान धुनि बिघटि सुरट उघटी हर हर की ॥”

—गंगावतरण ७म सर्ग ३७

हृदय की गति जानने वाले चन्द्रचूड़ से त्रिपथगाह के हृदय का मर्म न छिप सका । इसीलिये तो उन्होंने “दियौ सीस पैठाय वाम करि कै मनमानि ।” गङ्गा भी भगवान के सुखद-स्पर्श से इतनी आनन्द विभोर हुई कि “जटाजूट हिमकूट सवन वन सिमटि समानि ।” गङ्गा और भगवान शङ्कर की इस आनन्द-क्रीड़ा में “अनेक वीते संवत्सर ।” फिर वेचारे भगीरथ को भगवान भूतनाथ की आराधना करनी पड़ी, तब कहीं पुण्य-तोया का आगमन धराधाम पर हुआ । इस प्रकार चरित्र-चित्रण में कवि को पूरी सफलता प्राप्त हुई है । उसने अपने इस कार्य में अपने सफल मनोवैज्ञानिक होने का परिचय दिया है ।

गंगावतरण का कलापक्ष —

गङ्गावतरण की रचनाशैली बहुत सुन्दर तथा हृदयप्राही है । काव्य की उठान भी बहुत सुन्दर हुई है । कथा-प्रवाह में भी तीव्रता है । अष्टम सर्ग के बाद प्रवाह कुछ मन्द अवश्य पड़ गया है, पर इतना नहीं कि जिसमें पाठक बीच ही में उकता जाय । मुद्गावरो के तो रत्नाकर जी आचार्य ही थे । स्थल-स्थल पर उनका बहुत सुन्दर प्रयोग उन्होंने किया है । इसका एक उदाहरण यहां पर्याप्त होगा:—

कोउ पापिहिं पञ्चत्व-प्राप्त सुनि जमगन धावत ।
बनि बनि बावनि-वीर बढ़त चौचन्द मचावत ॥
पै ताकी तकि लोथ त्रिपथगा के तट ल्यावत ।
नौ-द्वै ग्यारह होत तीन-पांच ही बिसरावत ॥

—गङ्गावतरण सर्ग १०म २४

गङ्गावतरण में उत्प्रेक्षाओं का चमत्कार देखने योग्य है ।
इसका भी एक उदाहरण देखिये:—

“कबहुँ सुधार अपार वेग नीचे को धावै ।
हर हराति लहराति सहस्र जोजन चलि आवै ॥
मनु विधि चतुर किसान पौन निज मन को पावत ।
पुन्य-खेत उतपन्न हीर की रासि उसावत ॥”

—गङ्गावतरण ७म सर्ग २४

कहीं-कहीं सन्देह अलङ्कार की भी सुन्दर योजना की
गयी है । इसका भी एक उदाहरण देखिये:—

“कै निज नायक बँध्यौ विलोकत ब्याल पास तैं ।
तारनि की सेना उदण्ड उतरित अकास तैं ॥
कै सुर-सुमन-समूह आनि सुर-जूह जुहारत ।
हर हर करि हर सीरन एक सङ्गहि सब डारत ॥”

—गङ्गावतरण ७म सर्ग २५

कहीं एकसाथ दो-दो, तीन-तीन अलङ्कार भी मिल गये
हैं । उपमा, चपलातिशयोक्ति तथा उत्प्रेक्षा— इन तीनों का
चमत्कार एक ही साथ देखिये:—

सब अङ्गनि इक सङ्ग दीठि दामिनि लौं दमकी ।
ब्रजघात लौं अति कराल “डूँ” की धुनि धमकी ॥

देखत देखत भये सकल जरि छार छनक में ।

दास-पुत्तलनि माहिं लगी मनु आगि तनक में ॥”

—गङ्गावतरण द्वितीय सर्ग ३६

वीरोल्लास का संयत तथा मार्मिक वर्णन भी खूब हुआ है । देखिये:—

“कढ़ी परति करबाल कोस सौं चमकि चमकि कै ।

निकसे आवत बान तून सौं तमकि तमकि कै ॥

उठि उठि कर रहि जात कसकि तिनके बाहन कौं ।

पै न लगति अरि-खोज ओज सौं उत्साहन कौं ॥”

—गङ्गावतरण द्वितीय सर्ग ३

कुछ पद्यों पर बिहारी सतसई की भी स्पष्ट छाप दिखाई देती है, जैसे:—

“छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यो जौवन अङ्ग ।

दीपति देह द्रुहून मिलि, दिपति ताफता रङ्ग ॥”

—बिहारी

“बल बिक्रम पौरुष अपार दरसत अङ्ग अङ्ग तैं ।

बीर रौद्र दोउ रस उदार झलकत रंग-रंग तैं ॥

मनहु भानु-सित भानु-किरन-बिरचित पट बर की ।

झलक दुरंगी देति देह द्युति सिवसंकर की ॥”

—गङ्गावतरण ७म सर्ग १४

बिहारी का यह प्रसिद्ध दोहा:—

“कहलाने एकत बसत अहि, मयूर, मृग, बाघ ।

जगत तपोवन सो कियौ दीरघ दाघ निदाघ ॥”

गङ्गावतरण की इन पंक्तियों का प्रेरक कहा जा सकता है:—

“दीरघ-दाघ निदाघ मांहि पानी कौं तरसे ।
सीतल धार अपार पाइ बनचर सुख सरसे ॥
अति-अमन्द-आनन्द मगन मन उमगत डोलत ।
सहज बैर बिसराइ आइ कल कूल कलोलत ॥

× × ×

लखत कनखियनि चखत नीर मृग बाघ परस्पर ।
भाजत झपटत बनत पै न तजि नीर सुखद बर ॥
नाचत मुदित मयूर मंजु मद-चूर अघाए ।
अहि जुड़ात तिन पास पाइ सुख त्रास भुलाए ॥

हरिश्चन्द्र

यह रत्नाकर जी का खण्डकाव्य है। इसकी रचना चार सर्गों में हुई है। यह समस्त काव्य रोला छन्द में लिखा गया है। इसकी छन्दसंख्या इस प्रकार है:—

पहला सर्ग	३४ रोला छन्द
दूसरा सर्ग	३५ ” ”
तीसरा सर्ग	५८ ” ”
चतुर्थ सर्ग	१०६ ” ”
योग	२३६ ” ”

हरिश्चन्द्र काव्य के नायक हैं हरिश्चन्द्र। हरिश्चन्द्र धीर, प्रशान्त नायक हैं। हरिश्चन्द्रोपाख्यान प्रायः सभी पुराणों में आया है, परन्तु सभी में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य है। हरिश्चन्द्र काव्य में करुण-रस की नदी अबाध गति से प्रवाहित हो रही है। इन वाक्यखण्डों में तो मानो करुण-रस उबल रहा है:—

- १ “रोवत तऊ देखि तिनकौ लाग्यौ सिसु रोवन ।
इनके कबहुँ, कबहुँ उनके आनन-रुख जोवन ॥

× × × ×

- २ बिकनि देहु हमहि पहिलै सुनि हमारी ।
जामें ये दग लखै न ऐसी दशा तिहारौ ॥

- ३ कहौ विप्र सौ 'कीजै क्षमा नैंकु अब द्विजवर ।
लेहि निरखि भरि-नैन नाह कौ आनन सुन्दर ॥
फिर यह आनन कहाँ, कहाँ यह नैन अभागी ।
यौ कहि बिलखि निहारि नृपति रुख रोवन लागी ॥
- ४ चलित देखि दुखकृत-विकृत मुख बालक खोल्यौ ।
'कहाँ जाति, ननि जाइ माइ'—अञ्चल गहि बोल्यौ ॥

इस प्रकार चक्रवर्ती सम्राट् हरिश्चन्द्र, उसकी राजरानी शैव्या तथा राजकुमार रोहिताश्व का काशी में विकना पाठक के हृदय में उनके प्रति गहरी सहानुभूति उत्पन्न कर देता है। कुछ समय के लिये उसकी आँखों से अश्रु-प्रवाह उमड़ पड़ता है। इस काव्य में शैव्या-विलाप में करुणरस अपनी चरमसीमा पर पहुँच जाता है। हरिश्चन्द्र जैसे धीर, गम्भीर महापुरुष भी समय के थपेड़ों से बार-बार चोट खाने पर अपने हृदय के सारे धैर्य को खो बैठे। उनके ये शब्द कितने करुण हैं। कौन ऐसा पापाण-हृदय पाठक होगा जिसका हृदय हरिश्चन्द्र के इन शब्दों को सुनकर मोम न हो जायगा। देखिये कितने करुण हैं ये शब्द:—

“याहि बिटप में लाइ गैर फाँसी मरि जैहैं ।
कै पाथर उर धारि धार में धाइ समैहैं ॥
यों कहि अकुलाइ चल्यो धावन ज्यो रानी ।
त्यौं स्वर करि गंभीर धीर बोले नृप बानी ॥
‘बेचि देह दासी ह्वै तब तौ धर्म सम्हार्यौ ।
अब अधरम क्यों करति कहा यह हृदय बिचार्यौ ॥”

समूचे हरिश्चन्द्र काव्य की पृष्ठभूमि भारतेन्दु के हरिश्चन्द्र नाटक के आधार पर तैयार की गयी है। शैव्या का

विलाप तो हरिश्चन्द्र काव्य से ही अक्षरशः लिया गया है ।
उदाहरणार्थ देखिये:—

हाय हमारौ लाल लियौ इमि लूटि विधाता ।
अब काको मुख जोहि मोहि जीवै यह माता ॥
पति त्यागैं हूं रहे प्रान तब छोह सहारे ।
सो तुमहूं अब हाय विपत्ति में छाड़ि सिधारे ॥

× × ×

अबहि सांझ लौं तौ तुम रहे भली विधि खेलत ।
औचकहीं मुरझाइ परे मम भुज मुख मेलत ॥
हाय न बोले बहुरि इतोहि उत्तर दीन्ह्यौ ।
'फूल लेत गुरु हेत सांप हमकौं डसि लीन्ह्यौ ॥'
गयौ कहां सो सांप आनि क्यों मोहु डसत ना ।
अरे प्रान किहि आंस रह्यौ अब बेगि नसत ना ॥
कबहुं भाग बस प्राननाथ जौ दरसन दैहैं ।
तौ तिनकौ हम बदन कहौ किहि भांति दिखैहैं ॥

× × ×

उनतौ सौंप्यौ हमैं दशा हम यह करि दीन्ही ।
हाय हाय क्यों सुमन चुनन की आयुसी दीन्ही ॥
अहो नाथ अबतौ आवौ इत नैकु कृपा करि ।
लेहु निरखि निज हृदय खण्ड कौ बदन नैन भरि ॥

× × ×

प्राणदण्ड दें हमैं कष्ट वेगि निवारौ ।
सुनत क्यों न इहि बेर-फेर निज न्याव सम्हारौ ॥

हाय बत्स किन सुनि पुकारि मैया की जागत ।

अरे मरे हूँ पै तुम तौ अति सुन्दर लागत ॥”

हरिश्चन्द्र ४र्थ सर्ग ४४ से ४८ तक

सत्य हरिश्चन्द्र नाटक के शैव्या विलाप से उपर्युक्त पंक्तियों की तुलना कीजिये:—

“अरे यह क्या हो रहा है ? बेटा, कहाँ हो ? आओ जल्दी । अरे अकेले इस मसान में मुझे डर लगता है, यहाँ मुझे कौन ले आया है ? रे बेटा ! जल्दी आवां ! अरे क्या कहते हो, मैं गुरु के फूल लेने आया था, वहाँ काले साँप ने मुझे काट लिया । अरे कोई दौड़ के किसी गुनी को बुलाओ जो जिलावे बच्चे को । अरे वह साँप कहाँ गया, हमको क्यों नहीं काटता ? काट रे काट, क्या उस मुकुमार बच्चे पर ही बल दिखाना था ? हमें काट । हाय हमें नहीं काटता । अरे, यहाँ तो कोई साँप-चाँप नहीं है । मेरे लाल भूठ बोलना कब से सीखे ? हाय हाय ! मैं इतना पुकारती हूँ और तुम खेलना नहीं छोड़ते ? बेटा, गुरु जी पुकार रहे हैं, उनके हाँस की बेजा निकलती जाती है । देखो, बड़ी देर से वे तुम्हारे आसरे बैठे हैं । दो उनको जल्दी दूब और बेलपत्र । हाय ! हमने इतना पुकारा तुम कुछ नहीं बोलते; (जोर से) बेटा सांभ भई, सब विद्यार्थी लोग, घर फिर आये, तुम अब तक क्यों नहीं आये ? (आगे शव देखकर) हाय हाय रे ! अरे मेरे लाल को साँप ने सचमुच डस लिया । हाय लाल ! हाय रे ! मेरी आँखों के उजियाले को कौन ले गया । हाय मेरा बोलता हुआ सुग्गा कहाँ उड़ गया ! बेटा ! अभी तो बोल रहे थे, अभी क्या हो गया !

भारतेन्दु के सत्य-हरिश्चन्द्र नाटक की ये पंक्तियाँ—
 “अरे, बड़े-बड़े जोतसी-गुनी लोग तो कहते थे कि तुम्हारा बेटा
 बड़ा प्रतापी चक्रवर्ती राजा होगा, बहुत दिन जीयेगा सो सब
 भूठ निकला। हाय पोथी-पत्रा, पूजा-पाठ, दान-जप-होम कुछ भी
 काम न आया। हाय ! तुम्हारे बाप का कठिन पुण्य भी
 तुम्हारा सहाय न हुआ और तुम चल बसे।”

“पुत्र तोहिं लखि भाषत हैं सब गुनि औ पण्डित ।

है है यह महाराज भोगि है आयु अखण्डित ॥

×

×

×

तिनके सो सब वाक्य हाय प्रतिकूल लखाए ।

पूजा, पाठ, दान, जप-तप सब ब्रुथा जनाए ॥

तब पितु कौ दृढ़-सत्य ब्रतहु कछु काम न आयौ ।

बालपनेहिं में मरे जथाविधि कफन न पायौ ॥

—हरिश्चन्द्र ४था सर्ग ४२।४३

रत्नाकर के हरिश्चन्द्र काव्य की इन पंक्तियों को:—

“सो बोल्यो—“हम डोम चौधरी” मरघट वारे ।

अमल हमारौ रहत नदी के दुहूँ किनारे ॥

×

×

×

फूलमती कौ पूजन करत कलेस-नसावन ।

बिना लिए कर कफन देत नहीं मृतक जरावन ॥

धन-तेरस की सांझ और अधिरात दिवाली ।

नाचि-कूदि बलि पै पूजै मसान औ काली ॥”

—हरिश्चन्द्र ३रा सर्ग ४५।४६

भारतेन्दु के सत्य हरिश्चन्द्र नाटक की इन पंक्तियों से मिलाकर देखिये:—

“हम चौधरी डोम सरदार, अमल हमारा दोनों पार ।
सब मसान पर हमरा राज, कफन मांगने का है काज ॥
फूलमती देवी के दास, पूजें सती मसान निवास ।
धन-तेरस औ रात दिवाली, बल चढ़ाय के पूजें कालो ॥
सो हम तुमको लेंगे मोल, दें मुहर गांठ से खोल ॥”

भारतेन्दु के सत्य-हरिश्चन्द्र की ये प्रसिद्ध पंक्तियाँ:—

“चन्द्र टरे सूरज टरे, टरे जगत-व्यवहार ।
पै दृढ़व्रत हरिश्चन्द्र कौ, टरे न सत्य विचार ॥”

रत्नाकर के हरिश्चन्द्र की इन पंक्तियों से मिलाकर देखिये:—

“टरहिं चन्द सूरज औ टरहिं मेरु गिरि सागर ।
टरहि न पै हरिश्चन्द्र भूप कौ सत्य उजागर ॥”

हरिश्चन्द्र: २रा सर्ग: ७

भारतेन्दु के सत्यहरिश्चन्द्र का यह प्रसिद्ध भरत वाक्य:—

“खल गनन सों सज्जन दुखी मत होइं, हरिपद रति रहै ।
उपधर्म छूटै, स्वत्व निज भारत गहै, कर दुख बहै ॥
बुध तजहि मत्सर, नारि-नर सम होहि, सब जग सुख लहै ।
तजि ग्राम कविता सुकवि जन की अमृतबानी सब कहै ॥”

रत्नाकर जी किस प्रकार पचा गये, जरा देखिये तो सही:—

“सज्जन कौ सुख होहि सदा हरिपद-रति भावै ।
छूटै सब उपधर्म सत्व निज भारत पावै ॥

मत्सरता अरु फूट रहन इहिं ठाम न पावै ।

कुकबिनि कौ बिसराइ सुकवि-बानी जग गावै ॥”

—हरिश्चन्द्र ४था सर्ग १०७

इस प्रकार हम देखते हैं कि रत्नाकर जी का हरिश्चन्द्र भारतेन्दु जी के सत्यहरिश्चन्द्र से पूर्णरूपेण प्रभावित है। पंक्तियों की पंक्तियाँ ज्यों की त्यों मिलती हैं।

रत्नाकर जी के हरिश्चन्द्र में दानवीर, करुण, रौद्र, वीभत्स, भयानक आदि रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। रस-परिपाक की दृष्टि से हरिश्चन्द्र गंगावतरण की अपेक्षा अधिक सफल जान पड़ता है।

रत्नाष्टक तथा वीराष्टक

मुक्तक काव्य —

दर्पणकार ने मुक्तक रचनाओं की मीमांसा करते हुए कहा है:—

“यदि वह दूसरे पद से निरपेक्ष हो तो मुक्तक और यदि दो श्लोकों में वाक्यपूर्ति होती हो तो युग्मक, तीन पद्यों में हो तो सन्दानितक या विशेषक, चार में कलापक और पांच या इससे अधिक में होने पर कुलक होता है।”

रत्नाकर जी के रत्नाष्टक और वीराष्टक को हम कुलक की श्रेणी में रख सकते हैं, क्योंकि इनके पद्य कहीं २ आठ हैं अथवा कहीं आठ से अधिक हैं। प्रत्येक कवित्त अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखते हुए भी एक दूसरे से शृङ्खला की कड़ी के समान आवद्ध है।

रत्नाकर जी प्रबन्ध तथा मुक्तक दोनों ही प्रकार की रचनाओं में समानरूप से सफल हुए हैं। फिर भी रीतिकालीन कवियों से अधिक प्रभावित होने के कारण उनका मुक्तक रचनाओं पर अच्छा अधिकार था। रत्नाष्टक तथा वीराष्टक में तुलसी अष्टक को छोड़कर शेष सभी अष्टकों में कवित्त का ही रामराज्य है। तुलसी-अष्टक में भी सात छप्पयों के साथ दो कवित्त आ ही गये हैं।

अष्टकों का क्रम—

रत्नाष्टक में १६ अष्टक हैं और वीराष्टक में १४। इनमें किसी अष्टक में ८ कवित्त हैं और किसी में अधिक। यही क्रम

वीराष्टक में भी रहा है। रत्नाष्टक के अष्टकों का क्रम इस प्रकार है:—

नाम	पद्यसंख्या
(१) शारदाष्टक	८
(२) गणेशाष्टक	८
(३) श्रीकृष्णाष्टक	६
(४) गजेन्द्रमोक्षाष्टक	८
(५) यमुनाष्टक	८
(६) श्री सुदामाष्टक	८
(७) श्री द्रौपदी अष्टक	११
(८) तुलसी अष्टक	७
(९) बसन्ताष्टक	८
(१०) ग्रीष्माष्टक	८
(११) वर्षाष्टक	८
(१२) शरदाष्टक	८
(१३) हेमन्ताष्टक	८
(१४) शिशिराष्टक	८
(१५) प्रभाताष्टक	८
(१६) सन्ध्याष्टक	८
योग	१३१

वीराष्टक के अष्टकों का क्रम इस प्रकार है:—

नाम	पद्यसंख्या
(१) श्रीकृष्णदूतत्व	८
(२) भीष्म प्रतिज्ञा	८
(३) वीर अभिमन्यु	६
(४) जयद्रथ-वध	११
(५) महाराणा प्रताप	११

(६) छत्रपति शिवाजी	६
(७) श्री गुरुगोविन्दसिंह	१०
(८) महाराज छत्रसाल	६
(९) महाराणी दुर्गावती	८
(१०) सुमति	१
(११) वीर नारायण	२
(१२) नीलदेवी	८
(१३) महाराणी लक्ष्मीबाई	८
(१४) ताराबाई	३
योग	१०५

उपर्युक्त अष्टकों का क्रम कुछ न्यूनाधिक सा है। प्राचीन कवि अपनी मुक्तक-रचनाओं को अष्टक तथा शतक सप्तशती (सतसई) तथा हजार आदि का नाम देकर एक सूत्र में गुम्फित कर देते थे। इस प्रकार के संग्रहों में यही आवश्यक नहीं होता था कि शतक में पद्यों की संख्या सौ ही हो। अथवा अष्टक में केवल आठ ही पद्य आयें। निश्चित संख्या से प्रायः अधिक पद्य ही इस प्रकार के संग्रहों में रखे जाते थे। इसीलिये कभी-कभी शतकों की पद्यसंख्या सौ से अधिक, अष्टकों की आठ से अधिक और सतसइयों की सात सौ से अधिक हो जाती है। इसीलिये रत्नाकर जी के अष्टकों में भी कहीं-कहीं पद्यसंख्या आठ से अधिक हो गयी है। हमें कवि के ऐसे अष्टक भी मिलते हैं जिनकी पद्यसंख्या आठ से कम है। जान पड़ता है, किन्हीं कारणों से कवि इन अष्टकों को पूरा करने में असमर्थ रहा।

रसपरिपाक की दृष्टि से ये अष्टक बहुत सुन्दर बन पड़े हैं। वीराष्टक की रचना में तो कवि को असाधारण सफलता

मिली है। पुरानी परिपाटी के कवियों के समान कवि ने टवगे तथा द्वितवर्णों की भरमार करके व्यर्थ का शब्दाडम्बर नहीं दिखाया। रस-प्रवाह को तीव्रता देने के लिये आलम्बन को ही सजाने तथा संवारने में रत्नाकर ने अपने कलम की कारीगरी दिखाई है। वीर के साथ रौद्र का सम्मिलन करके कवि ने अपने वर्णनों में सजीवता उत्पन्न कर दी है। अभिमन्यु-वध से दुःखी वीर शिरोमणि अर्जुन की यह प्रतिज्ञा देखिये:—

“पांडव कौ ताप औ प्रताप दुरजोधन कौ,
सूत-सुतहू कौ दाप सोधि सियराजं मैं ।
कहै रतनाकर यह प्रतिज्ञा पारथ की,
द्रोनहू महारथ की धाक धोइ धाजं मैं ॥
सिंधुराज जटिल जयद्रथ कौ जीवन लै,
आज अन्धराज हिय आंखिनि खुलाजं मैं ।
कृष्णभगिनी के द्रौपदी के उत्तरा के हियैं,
सोक-बिकराल-ज्वाल जरति जुड़ाजं मैं ॥”

रत्नाकर जी के वीराष्टक में जातीयता तथा देश-प्रेम की भावनायें भी छलछला रहीं हैं। गुरुगोविन्दसिंह की यह प्रतिज्ञा जातीयता की भावना को जागृत करने वाली है। देखिये कितने वीरतापूर्ण शब्द हैं:—

“बैठि पठनैटनि के उमगे अंगेठनि मैं,
चूर करि एँठ सबै धूरि मैं धुरेट मैं ।
कहै रतनाकर प्रचारयौ गुरु गोविन्द यौ,
मीर मीरजादनि के धीर धरि फेदू मैं ।
सेखनि की सेखी करि देखत अलेखी सबै,
दूरि दलि भूरि मुगइल दपेदू मैं ।

भेद' भव्य भाव देस-भक्त सदपंथनि के,
मोहमद-पंथिनि के मोह-मद मेद' मैं ॥”

अब तनिक महाराणा प्रताप का रौद्र रूप देखिये:—

म्लेच्छनि के दीन कौ जलाल पायमाल करे,
रूम के हिलाल-भाल नाल थिर थापै है ।
कहै रतनाकर अरीनि-उर हार देत,
चारु चन्द्रहार उबटी कै उर आपै है ॥

प्रबल. प्रताप जब चढ़त बिलोकि बंक,
बौरिनि कौ अमित अतंक पूरि तापै है ॥
झापै तुरकनि कौ सितारा धूरि धारा माहिं,
अस्वटाप हिंदुनि की छाप छिति छापै है ॥”

कवि हिन्दुत्व की भावनाओं को जागृत करके हमें एक नयी चेतना देता है। उसकी राष्ट्रीयता केवल वर्तमान को ही नहीं देखती, वह उसके स्वर्णिम अतीत पर भी दृष्टिपात करती है। उसकी वीरोल्लासमयी वाणी युगों की सोयी हुई हिन्दु-जाति को शक्ति और जागरण का सन्देश देकर कतेव्य और जीवन संप्राम की ओर अप्रसर करती है। कवि की राष्ट्रीयता गांधी जी की राष्ट्रीयता नहीं है। इस क्षेत्र में तो वह भूषण का प्रतिनिधित्व करता है। वह केवल हिन्दुराष्ट्र का ही स्वप्न देखता है। इसीलिए तो वह कहता है:—

“जोई जात गाजि सोई आवत गंवाइ भाजि,
भारी सेन ऐसहिं हमारी बिसि जायगी ।
बब्बर की धाक औ अकब्बर की साक सबै,
अब्बर की छाक लौं सनैहीं भिसि जाइगी ॥

सोच रत्नाकर की तरल तरंगे पोच,

गनि-गनि हाय के बिहाइ निसि जाइगी ।

बढ़ति महत्ता देखि छत्ता की चकत्ता कहै,

सत्ता इस्लाम की सबै धौं खिसि जाइगी ॥”

छत्ता की महत्ता, इस्लाम की सत्ता का पत्ता उखाड़ फेंकेगी, ऐसा कहने में कवि एक अनिवचनीय सुख का अनुभव करता है। प्रताप के घोड़े की टापों से “मलैच्छन के दीन” को “पायमाल” होते हुए देखकर वह अपूर्व सुख का अनुभव करता है। गीराष्टक ही नहीं कवि की अन्य रचनाएँ भी उसकी मुसलमान-विरोधिनी धारणा की परिचायक हैं। हिन्दुओं को मुसलमानों की शुद्धि का उपदेश देने हुए कवि कहता है:—

“क्रुद्ध हूँ मलैच्छनि की सुद्धि के विरुद्ध बने

जाल जो कुबुद्धि तनै उद्धत अडंगा कौ ।

कहै रत्नाकर न संकुचित होत स्वं

परम प्रपंच रचै दैभ अरु दंगा कौ ॥

लाइ कै लबार हरताल निगमागम पै

झाड़ कै बिकार निज कुमति कुदंगा कौ ।

झांप हरिनाम के प्रताप पर पारत है,

गारत हैं गौरव गंवार गुनि गंगा कौ ॥”

इस प्रकार हम कवि में हिन्दुत्व के प्रति दृढ़ आस्था पाते हैं। गीराष्टक जैसा काव्य एक सच्चे हिन्दू की लेखनी से ही लिखा जा सकता है। कवि के हृदय में अपने अतीत कालीन वीरों के प्रति अगाध श्रद्धा है; उन्हीं के पदचिन्हों पर चल कर ही वह भावी भारत का निर्माण करना चाहता है।

अन्य रचनाएँ

गङ्गालहरी, विष्णुलहरी और शृङ्गार लहरी

इन तीनों पर पद्माकर का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। गङ्गालहरी तथा विष्णुलहरी में $५२+५२ = १०४$ कवित्त हैं। शृङ्गार लहरी की छन्द संख्या १६८ है जिनमें २८ सवैया और १४० कवित्त हैं। विष्णु लहरी पर पद्माकर के प्रबोध-पचासे का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। रही गङ्गालहरी, उसकी तो मूल प्रेरणा पद्माकर की गङ्गालहरी को ही समझना चाहिये। विष्णु लहरी तथा पद्माकर के प्रबोधपचासे में बहुत साम्य है। उदाहरणार्थ देखिये :—

‘जोग जप सन्ध्या साधु साधन सबैई तजे,
कीन्हें अपराध ते अगाध मन भावते ।
तेते तजि औगुन अनन्त ‘पदमाकर’ तौ,
कौन गुन लै कै महाराज ही रिभावते ॥
जैसे अब तैसे पै तिहारे बड़े काम के हैं,
नाहिं तौ न एतै बैन कबहु सुनावते ।

पावते न मो सो जो पै अधम कहूँ तो राम,
कैसे तुम अधम उधारन कहावते ॥”

‘पदमाकर’ प्रबोधपचासा

“ऐते बड़े नाथ हू न हाथ करि पावैं जाहि,
ताकौ वार हाय हमवार किमि आइंगे ।
कहै रतनाकर न हम हमता मैं आई,
ऐसे मन प्रबल—प्रभाई सौं बिगाड़ेंगे ॥
निज करनो-फल के विफल सहारे कहा,
रावरौ भरोसौ—तरु कामद उजाड़ेंगे ।
छाड़ेंगे न कान्ह आप जबलौं कृपा की कानि
तौ लौं बानि हमहु कुठानि की न छाड़ेंगे ॥

‘रत्नाकर’ बिष्णु लहरी

रत्नाकर की शृङ्गार लहरी पर पद्माकर के ‘जगद्विनोद’
का अधिक प्रभाव है ।

शृङ्गार लहरी के कितने ही कवित्त तथा सर्वेये ऐसे भी
हैं जिन्हें कवि अपने जीवन काल में पूरा नहीं कर सका, जैसे—

शृङ्गार लहरी—	पद्य संख्या	१७
”	”	५७
”	”	१०६

प्रकीर्ण पद्यावली

रत्नाकर जी की मुक्तक रचनाओं का यह भी एक छोटा
सा संग्रह है । कुल मिला कर इ .में १६२ पद्य हैं । इनमें कवित्त
सवैया, दोहा, रोला आदि सभी छन्द हैं । ये छन्द समय समय
पर लिखे हुए जान पड़ते हैं ।

कविवर रत्नाकर का सम्बन्ध एक देशी राज्य से था। रत्नाकर के समय में देशी राज्य अंग्रेजों की कठपुतली थे। अस्तु, रत्नाकर जी को भी कभी कभी गौरांग महाप्रभुओं की स्तुति करनी पड़ जाती थी। युक्तप्रान्त के तत्कालीन गवर्नर सर मालकमहेली की प्रशंसा में लिखा हुआ रत्नाकर जी का एक कवित्त भी संग्रह में मिलता है। यह कवित्त अधूरा है। सम्भव है कि कवि बाद में इस पर अपनी कलम की करामात दिखाना चाहता हो, अथवा उसका विचार अपने संग्रह में इसे स्थान देने का न हो। यह कवित्त इस प्रकार है—

“एहौ लन्दनेस लौ बिराजे रहौ
छाजे रहौ छाया तुम नीति सुरबेली की।
ह्वै है सांति फेरवाही भांति भव्य भारत में
पांति पछितै है क्रान्तिकारिनि भूमेली की ॥

... ..
... ..

पै है एक बाल एक बालकम होन नाहिं
ढाल कम ना है एक मालकम हेली की ॥

रत्नाकर जी भारतेन्दु युगीन कवि थे। अंग्रेजी राज्य के प्रति उनके हृदय में वही भावना थी जो हम भारतेन्दु तथा भारतेन्दु युगीन कवियों में पाते हैं। भारतेन्दु ने—

“अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी,

पर धन विदेश चलि जात यह अति खूबारी।” कह कर अंगरेजी राज्य के प्रति एक प्रकार से अपनी सद्भावना ही दिखाई थी। ‘भले ही भारत का धन विदेश चला जाय पर इससे तो कोई इन्कार नहीं कर सकता कि महारानी विक्टोरिया तथा

उनके सुपुत्रों के राज्य में सुख शान्ति का अभाव है।' यह थी भारतेन्दु युग की विचारधारा !

१८५७ के ग़दर के उपरान्त कम्पनी ने अपनी सारी शासन सत्ता विक्टोरिया तथा उनके वंशजों को सौंप दी। शासन वही था, शासक वही था, केवल नाम का अन्तर था। शराब वही थी, बोटल वही थी, सिर्फ़ लेबल बदल दिया गया था। ऐसी दशा में यदि भारतीय जनता गौरांग महाप्रभुओं की चाल के जाल में फँस जाय तो आश्चर्य की क्या बात ? कविवर रत्नाकर भी इसी वातावरण में पले थे। उन पर सामन्त युग का गहरा प्रभाव था। देशी राज्यों के साथ सम्बन्ध रखने के कारण यह रङ्ग और भी निखर गया था। इसी लिए तो उन्होंने भावी भारत में शान्ति की कामना करते हुए क्रान्तिकारियों के विषय में कहा था—

“हूँ है शान्ति फेर वाही भांति भव्य भारत में
पांति पड़ितै है क्रान्तिकारिनी झमेली की ॥”

कवि की “हूँ है शान्ति फेर वाही भांति भव्य भारत में” कहना सन् १८५७ के किये जाने वाले भारतीय स्वतन्त्रता के उस प्रथम महायुद्ध की ओर इङ्कित करता है जिसके विफल होने पर लार्ड केनिंग ने विक्टोरिया का घोषणा पत्र सुना कर भारत में शान्ति स्थापना का स्वाँग रचा था।

हिंडोला

हिंडोला रत्नाकर जी की सर्व प्रथम रचना है। इसका रचना-काल उक्त काव्य के अन्त में इस प्रकार दिया गया है—

१ २ ३ १
मन इन्द्रिय अरु भक्ति सहित गोपालहि लायो ।
तिहि तरङ्ग मैं रचि भूलन, अति रुचिर भुलायो ॥

इस काव्य में आदि से अन्त तक संभोग-शृङ्गार ही की प्रधानता है। समस्त काव्य की रचना रोला छन्द में हुई है। मङ्गलाचरण में एक कवित्त तथा एक दोहा दिया गया है।

प्रारम्भिक रचना होने के कारण इस काव्य में कवि की प्रतिभा का पूर्ण विकास नहीं हो सका। कोरी चूमा चाटी को पढ़ते पढ़ते कभी कभी तो मन उकताने लगता है। यह काव्य १०० रोला छन्द में पूर्ण हुआ है।

कल-काशी

इसके मङ्गलाचरण में एक छपै दिया गया है तथा शेष समस्त काव्य की रचना रोला छन्द में की गई है। मङ्गलाचरण के अतिरिक्त इस काव्य में कुल मिला कर १४२ छन्द हैं। कवि इस काव्य को अपने जीवनकाल में पूर्ण नहीं कर सका। इसका अन्तिम छन्द तक अपूर्ण मिलता है। उदाहरणार्थ देखिये—

“मित्र-मण्डली चलति कबहुँ आराम-रमन कौं ।
सेवन सुचि जल बात तथा श्रम बिसम समन कौं ॥
बहु प्रकार व्यापार-जनित दुख-दन्द दमन कौं ।

...

कल-काशी आदि से अन्त तक वर्णन प्रधान काव्य है। विश्वनाथपुरी के ठाठ-बाट का रोचक वर्णन करना ही इसके कवि का प्रधान उद्देश्य रहा है। बनारसी साधु-सन्तों

तथा मठधारी महन्तों के भोजनों का चटपटा वर्णन पढ़ कर मुँह में पानी भर आता है । उदाहरणार्थ देखिये—

“पातल दोने दिव्य विमल कल कदली दल के ।
परत पाँति के पाँति खच्छ धोए सुचि जल के ॥
भाँति भाँति के जात पुनीत पदारथ परसे ।
सुन्दर सोधे खादु खच्छ सब रस सो सरसे ॥२७॥

बासमती को भात रमुनिया दाल सँवारी ।
कढ़ी पकौरी परी कचौरी मोयनवारी ॥
दधि-भीने बर बरे बरी सह साग निमाने ।
पापर अति परपरे चने चरपरे सलौने ॥२८॥

नीबू आम अचार अम्ल मीठे रुचिकारी ।
चटनी चटपट अ-रस सरस लटपट तरकारी ॥
मोदक मोतीचूर जाल-जुत मालपुवा तर ।
मेवामय श्रीखण्ड केसरिया खीर मनोहर ॥२९॥

कुछ पद्यों में विश्वनाथ पुरी की पाण्डित्य मण्डली का परिचय भी कराया गया है । जैसे:—

दलन बिपच्छिनि-पच्छ माहि अति दच्छ राम से ।
नैयायिक अति निपुन, बेद-बेदान्त धाम से ॥
षट् सास्त्रनि को गूढ़, ज्ञानधर सिवकुमार से ।
वैयाकरण विदग्ध, सुमति बारिधि अपार से ॥२९॥

ज्योतिषसुधा मयूष-अगार सुधाकर बर से ।
पानिनि ग्रन्थित सूत्र बिभूषित दामोदर से ॥
फलादेस मरजाद मृदुल अवधेस सरीखे ।
गननागन में गुरु गनेस से अति मति तीखे ॥३०॥

आयुर्वेद प्रभेद परम भेदी गनेस से ।
 रस-प्रयोग आचार्य चारुमति त्रिम्बकेस से ॥
 सुरुचि सौम्य साहित्य सलिलधर गङ्गाधर से ।
 रोचक कवितारत्न रुचिर गृह रतनाकर से ॥२३॥

इस प्रकार समस्त काव्य एक लम्बी-चौड़ी फेहरिस्त में कवि ने गिनवाई है। इस लम्बी-चौड़ी फेहरिस्त में अपनी गणना करना भी कवि नहीं भूला।

काव्य की दृष्टि से हम कल-काशी को उत्तम रचना नहीं कह सकते। एक देशीय वर्णन होने के कारण उसे पढ़ते पढ़ते कभी कभी मन उकताने लगता है। हो सकता है इसे लिखते लिखते स्वयं कवि भी उकता गया हो, इसी लिए उसने इसे अधूरा ही छोड़ दिया। कवि इस काव्य में केवल वस्तुओं के नाम गिनवा कर ही रह गया है, इसीलिए इसमें कहीं हृदय-पक्ष का पता ही नहीं चलता।



आधुनिक ब्रजभाषा काव्य में रत्नाकर का स्थान

आधुनिक ब्रजभाषा काव्य—

यह युग वैसे तो खड़ी बोली का है, पर ब्रजभाषा आज भी काव्य-प्रेमियों के हृदय में स्थान बनाये हुए है। इस युग में भी ब्रजवाणी के भक्त अब भी अपनी साधना में जुटे हुए हैं। वे आज भी उन्हीं पुराने रोला, कवित्त, छप्पय, दोहा तथा बरवै आदि छन्दों में अपनी ललित लेखनी का लावण्य दिखा रहे हैं। बिहारी के अनुकरण पर सतसइयों की रचना अब भी जारी है। श्री दुलारेलाल भार्गव बिहारी का प्रतिनिधित्व इस युग में भी कर रहे हैं। बिहारी के मार्ग पर चल कर इस में श्री वियोगो हरि ने वीर सतसई तथा पण्डित रामेश्वर करुण ने करुण सतसई की रचना की। यह सत्य है कि इन सतसइयों में बिहारी सतसई के समान शृङ्गार रस की मन्दाकिनी नहीं प्रवाहित होती, फिर भी बिहारी के द्वारा इन्होंने सतसइयों की रचना की मूल प्रेरणा ली, ऐसा तो सभी को स्वीकार करना पड़ेगा। वीर सतसई के सैकड़ों दोहे बिहारी दोहों के साँचे में

ढाले गये हैं। आधुनिक युग में बिहारी के दोहों के अनुकरण पर श्री दुलारेलाल भार्गव बहुत सुन्दर रचना करने में सफल हुए हैं। बिहारी के भावों को अपना कर भी उन्होंने उसमें एक प्रकार की मौलिकता ला दी है।

स्वर्गीय रत्नाकर जी भी इस सतसई की परम्परा में योग देना चाहते थे इसीलिए उन्होंने कुछ दोहे लिखे भी थे, पर कार्यों में व्यस्त रहने के कारण उनका यह प्रयत्न अधूरा ही रहा।

कवि की वाणी में उसका युग बोलता है। इस सिद्धान्त के अनुसार आधुनिक ब्रज-भाषा के कवि जमाने की दौड़ में किसी से पीछे नहीं हैं। वियोगी हरि की 'वीर सतसई,' रामेश्वर करुण की 'करुण सतसई' के सभी दोहों में उनका युग ही बोल रहा है। रत्नाकर के वीराष्टक वर्तमान युगीन राष्ट्रीयता तथा जातीयता की भावना से ओतप्रोत हैं।

वर्तमान युग के ब्रज-भाषा के कवियों ने प्रबन्ध काव्यों की ओर भी अधिक ध्यान दिया। वह अपने पथ-प्रदर्शक रीति कालीन कवियों की तरह केवल मुक्तक काव्यों की रचना में ही नहीं जुटे रहे। स्वर्गीय रत्नाकर जी का "गङ्गावतरण" तथा "हरिश्चन्द्र" ब्रज-भाषा के श्रेष्ठ प्रबन्ध काव्यों में स्थान पाने योग्य हैं। श्री हरदयालुसिंह का "दैत्यवंश" अपने ढङ्ग का बहुत ही सुन्दर सरस तथा सफल महाकाव्य है।

आधुनिक ब्रज-भाषा के कवियों की रुचि कवित्त, सबैयों की ओर अधिक है; इस क्षेत्र में उनके पथ-प्रदर्शक हैं देव, घन आनन्द और पद्माकर। स्वर्गीय रत्नाकर जी ने भी इन्हीं कवियों के पद-चिन्हों पर चल कर अपना मार्ग तय्यार

किया था। रत्नाकर जी के बाद वर्तमान युग के जीवित कवियों में सब से अधिक सफलता यदि किसी कवि ने प्राप्त की है, तो वे हैं डाक्टर रसाल।

डाक्टर रसाल काव्य-शास्त्र के पूर्ण पण्डित तथा ब्रज-भाषा काव्य के प्रकाण्ड विद्वान हैं। उनकी अलंकारिक योजना रत्नाकर जी के समान ही अनोखी तथा चोखी है। उन्होंने भी रत्नाकर जी के समान ही उद्धव-गोपी सम्वाद में अपनी ललित लेखनी का लावण्य दिखाया है। उनके कितने ही कवित्त रत्नाकर जी से टक्कर लेते हैं।

आधुनिक ब्रज-भाषा काव्य में रत्नाकर का स्थान

इतना सब होने पर रत्नाकर जी के विशाल काव्य-कौशल से श्री रसाल जी के लघु प्रयत्न की तुलना करना सूर्य को दीपक दिखाना ही समझा जायगा। रत्नाकर जी ने आधुनिक युग के सभी कवियों से अधिक मात्रा में लिखा है। काव्य के मुक्तक तथा प्रबन्ध—दोनों क्षेत्रों में उनकी प्रतिभा परी ने उड़ाने ली है।

ब्रज-भाषा के वर्तमान कवियों में भारतेन्दु जी का नाम सर्व प्रथम आता है; परन्तु अल्पायु होने के कारण प्रतिभाशाली होने पर भी वे अधिक नहीं लिख सके; यही बात श्री सत्यनारायण काविरत्न के विषय में भी कही जा सकती है। श्री रत्नाकर जी को अपनी प्रतिभा के विकास के लिए सब से अधिक समय मिला, इसीलिए वे सब से अधिक लिख सके। उनकी रचनाओं का हम रीतिकालीन कवियों का अन्धानुकरण नहीं कह सकते, जैसी बहुमुखी प्रतिभा उनकी थी वैसी बहुत

कम कवियों में पाई जाती है। काव्य का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जिसमें उनकी प्रतिभा परी ने उड़ाने न मारी हों।

जब हम उनका रचनाओं का अध्ययन करते हैं तो हमें उनमें रीतिकाल से लेकर द्विवेदी युग तक की सभी प्रवृत्तियों के दर्शन हो जाते हैं। रीतिकालीन काव्यों की प्रतिभा का विकास भी एकमुखी था, किसी एक क्षेत्र में ही उनकी प्रतिभा परी उड़ाने दिखा सकी, परन्तु रत्नाकर जी की बहुमुखी प्रतिभा ने अपने लिये कोई क्षेत्र छोड़ा ही नहीं।

आधुनिक ब्रज-भाषा के कवियों का विकास एकाङ्गी है। वे केवल कवि हैं, काव्य-शास्त्र के पण्डित नहीं; रत्नाकर जी कवि होने के साथ साथ काव्य-शास्त्र के पूर्ण पण्डित भी थे। हम श्री रसाल जी में भी कवित्व और पाण्डित्य दोनों पाते हैं पर उनका क्षेत्र रत्नाकर जी की अपेक्षा अभी सीमित है, केवल मुक्तक तक ही उन्होंने अपनी ललित लेखनी का लावण्य दिखाया है।

श्री रत्नाकर में वीरगाथा काल से अब तक, जो हिन्दी कविता का विकास हुआ है, उसके दर्शन होते हैं। वीरगाथा कालीन कवियों की वीरोल्लासपूर्ण रचनाएँ, जिनमें अधिक कवित्व तथा छप्पय का उपयोग हुआ था रत्नाकर के वीराष्टक में देखने को मिलती हैं। रामभक्त कवियों की प्रबन्ध पद्धति—जिसे हम उनके गङ्गावतरण तथा हरिश्चन्द्र काव्य में पाते हैं। कृष्णभक्त कवियों की भक्ति प्रधान रचनाएँ—जिनका उपयोग उन्होंने अपनी विष्णुलहरी में किया है। रीतिकालीन कवियों के कवित्व सवैया वाली मुक्त रचनाएँ—जिनका उपयोग उन्होंने शृङ्गार लहरी में किया है।

छन्द-योजना, रस-प्रवाह, अलङ्कारिक सौन्दर्य सभी कुछ उनमें था। उर्दू पारसी की लाक्षणिकता में तो केवल घन-आनन्द ही उनकी समानता करते हैं।

रत्नाकर में वैष्णवों की भावुकता, रीतिकालीन कवियों की अलङ्कारिक योजना, आधुनिक कवियों की देशभक्ति तथा जातीय प्रेम सभी कुछ हम पाते हैं।

रीति कालीन कवियों में वस्तु निरीक्षण शक्ति तथा व्यक्ति अनुभव की कमी हम पाते हैं, पर रत्नाकर में यह कमी हम नहीं पाते। बिहारी के समान उनका सांसारिक अनुभव बहुत बड़ा चढ़ा था, साथ ही केशव के समान उनमें ग्रन्थ पाण्डित्य भी था।

॥ समाप्त ॥

